कृपा रसकोश

...कृत साहित्य में ...
...तक प्रकाशित नहीं
...भी मनोरंजक है।
...य और ऐतिहासिक-
पुस्तक ...
स्पष्टीकरण करने के लिये संपादकने, पुस्तक की अपेक्षा
बड़ी प्रस्तावना लिखी है जिस में अश्रुतपूर्व अनेकानेक
बातों का जिक्र है। सरस्वती-संपादक पं महावीर
प्रसादजी द्विवेदी, बाबू कन्नोमलजी एम ए., मुन्शी देवी
प्रसादजी के पत्र ... डॉ आर भाण्डारकर
एम ए. आदि अनेक प्रख्यात विद्वानों ने इस की
बड़ी प्रशंसा की है। प्रत्येक विद्वान को एक बार
अवश्य देखने लायक है। मूल्य मात्र एक रुपया।

कृपारसकोश।

संपादक-

मुनि जिनविजय।

प्रवर्तककान्तिविजयजैनइतिहासमाला-द्वितीय पुष्प ।

अर्हम् ।

महोपाध्याय-श्रीशान्तिचन्द्रप्रणीतः

कृपारसकोशः ।

(विस्तृत प्रस्तावना और संक्षिप्तसार सहित।)

सम्पादक-

मुनि जिनविजय ।

प्रकाशक-

श्रीजैनआत्मानन्द सभा
भावनगर ।

(प्रथमावृत्ति-५०० प्रति.)

वीर संवत २४४३.
ईस्वी सन १९१७.

मूल्य-
एक रुपया ।

प्रकाशक-
गांधी वल्लभदास त्रिभुवनदास।
सेक्रेटरी-
श्री जैन आत्मानन्द सभा,
भावनगर।

मुद्रक-
छोटालाल लालभाई पटेल
लक्ष्मीविलास-प्रेस,
भाउकाले की गली-बडौदा।
(ता. १-१-१९१७)



तीसरी जैनश्वेताम्बर कॉन्फरन्स की स्वागत कमीटीके प्रमुख
शेठ फतेभाई अमीचंद जौहरी
बडौदा।

धन्यवाद

प्रवर्त्तक श्रीमत्कान्तिविजयजी महाराज के

विद्वान् शिष्य मुनिमहाराज श्रीचतुर-

विजयजी के सदुपदेश से

बडौदे वाले

जौहरी शेठ अंबालाल नानाभाईने अपने

पितामह शेठ फतेभाई अमीचंद

के पुण्यार्थे

इस पुस्तक के छपवाने में द्रव्यसंबंधी उदार

मदत दी है इस लिये उन को धन्यवाद

दिया जाता है



अकबर बादशाह जगद्गुरु हीरविजयसूरि का स्वागत कर रहे हैं।

प्रास्ताविक कथन।

भारतवर्ष के मुसलमान बादशाहों में अकबर के जैसा प्रजाप्रिय बादशाह और कोई नहीं हुआ। इस महान् मुगल-सम्राट् के राज्य-चातुर्य और विचार-औदार्य से शिक्षित जगत् सम्यक् तया परिचित है। इस के ऐश्वर्यशाली और प्रतापवान् जीवन का थोड़ा बहुत परिचय भारत के प्रत्येक विद्यार्थी को अवश्य कराया जाता है। इसी महान् नृपति के उदार-हृदय-मंदिर में दया-देवी की शाश्वत स्थापना करने के लिये, देवी के परम-उपासक और जैनश्वेताम्बर संप्रदाय के प्रभावक आचार्य श्रीहीरविजयसूरि के सुप्रतिष्ठित विद्वान् शिष्य श्रीशान्तिचन्द्र उपाध्याय ने, कृपा-करुणा रूप रस-अमृत के कोश-निधि समान इस "कृपारसकोश" की रमणीय रचना की है। अकबर के समान श्रीहीरविजयसूरि का भी जीवन, धार्मिक-दृष्टि से, बड़ा ऐश्वर्यशाली और तेजोमय था। विद्वानों का समुदाय सूरिमहाराज के पवित्र चरित्र से भी बहुत कुछ परिचित है—नहीं तो होना चाहिए।

बादशाह अकबर के और आचार्य श्रीहीरविजयजी के चरित्र के विषय में अधिक उल्लेख करने की यहां पर जगह नहीं है; तो भी प्रस्तुत पुस्तक के—कृपारस-कोश के—साथ संबंध रखने वाले इतिहास का "प्रास्ताविक कथन" कहे बिना पाठकों को इस दया रस के सुंदर सरोवर की मंद और मधुर लहरों का पूर्ण आनन्द नहीं आ सकता; इस लिये, इस शीर्षक नीचे वही लिखा जाता है।

जगद्गुरुकाव्य* में लिखा है कि—अकबर बादशाह एक दिन फतहपुर के शाही महल में बैठा हुआ राजमार्ग का निरीक्षण कर रहा था। इतने में एक बडा भारी जुलूस उस की नज़र नीचे हो कर निकला जिस में एक स्त्री सुन्दर वस्त्र पहने हुए और फल-फूलादि के कुछ थाल सामने रक्खे हुए, पालखी में सवार हो कर जा रही थी। बादशाह ने यह देख कर अपने नौकरों से पूछा कि यह कौन है और कहां पर जा रही है? जवाब में नौकरों ने अर्ज़ की कि यह कोई जैन श्रीमन्त श्राविका+ है जिसने छः महिने के कठिन उपवास किये हैं। इन उपवासों में केवल गर्म पानी पीने के सिवा—सो भी दिन ही में—और कोई भी चीज मुंह में नहीं डाली जाती है। आज जैनधर्म का कोई त्योंहार (पर्व) है इस लिये, यह बाई अपने जैनमंदिर में दर्शन करने के लिये इस उत्सव के साथ जा रही है। बादशाह को यह सुन कर आश्चर्य हुआ; परंतु इस बात पर विश्वास नहीं आया। उसने तुरन्त बाई को अपने पास बुलाया और उसकी आकृति तथा वाणी का ध्यान पूर्वक निरीक्षण किया। यद्यपि बाई के तेजस्वी वदन और निर्दोष वचन को देख-सुन कर उसे, उस के विषय में बहुत कुछ सत्य प्रतीत हुआ तथापि पूरी जाँच करने के लिये उस ने बाई को अपने ही किसी एकांत मकान में रहने की आज्ञा दी। साथ में विश्वासु नौकरों को यह सूचना दी गई कि इस की दिनचर्या का बडी सावधानी के साथ अवलोकन किया जाये और यह क्या खाती-पीती है इस की पूरी तलाश ली जायें। कोई महिना डेढ महिना इस तरह की जाँच-पडताल करने निकल

* यह काव्य, श्रीहीरविजयसूरि अकबर के दरबार से वापस लौट कर जब गुजरात की ओर आ रहे थे, तब उन के आगमन के समाचार को सुन कर पंडित पद्मसागरगणि ने, काठियावाड के मंगलपुर (मांगलोर) में—संवत् १६४६ के आस पास—रच कर, सूरिजी को भेंट के रूप में अर्पण किया था।

+ इस का नाम अन्यान्य प्रबंधों में 'चंपा' लिखा है और सेठ थानसिंह, जो अकबर का मान्य साहुकार था, के घराने में से बताई गई है।

गया, परंतु उस तपस्विनी की विशुद्ध वृत्ति में किसी प्रकार की दंभता का स्वप्न भी न आया। यह जान कर अकबर के आश्चर्य का पार नहीं रहा। वह उस श्राविका के पास प्रेम पूर्वक जाकर, प्रणाम के साथ बोला कि—"हे माता! तूं इतना कठिन तप क्यों और कैसे कर सकती है?" तपस्विनी ने केवल इतना ही उत्तर दिया कि—"महाराज! यह तप केवल आत्महित के लिये किया जाता है और साक्षात् धर्म की मूर्ति समान महात्मा हीरविजयसूरि जैसे धर्मगुरुओं की सुकृपा का एक मात्र फल है।" बादशाह ने अपने अपराध की क्षमा माँग कर अच्छे आदर के साथ उस तपस्विनी श्राविका को अपने स्थान पर पहुँचाया। अकबर बडा सत्यप्रेमी और तत्त्वरसिक था। इस लिए वह क्या हिंदु और क्या मुसलमान, क्या खीस्ती और क्या पारसी; सभी धर्मों के ज्ञाताओं को अपने दरबार में बुलाता और उन के धर्म और तत्त्व ज्ञान के विषय में बहुत कुछ नाना प्रकार के प्रश्न कर अपना ज्ञान बढाता था। जो बातें उसे ठीक लगतीं उन का स्वीकार भी करता था। हीरविजयसूरि का नाम सुनते ही उसे, उन से मिलने की प्रबल उत्कंठा हो आई। सूरिमहाराज के विषय में बादशाह ने अपने अधिकारियों से, वे कैसे और कहां पर रहा करते हैं, इस बारे में पूछताछ की। *इतिमादखान–गुजराती—जो अपने गुजरात के अधिकार काल में, सूरिजी से अनेक बार मिला था और उन के पवित्र जीवन से बहुत कुछ परिचित था—ने बादशाह से सूरिराज के संबंध में विशेष बातें कहीं; तथा उन का विहार स्थान, जो अधिक तया गुजरात था, बताया×। अकबर ने

* इतिमाद खान, ई० स० १५५४ से १५७२ तक, गुजरात के सुलतान अहमदशाह २ रे और मुजफ्फर शाह ३ रे के समय में, गुजरात के राज्य-कार्य में अग्रगण्य अमीर था। ई० स० १५८३–८४ में अकबर ने फिर भी इसे गुजरात का सूबेदार बनाया था। (गुजरातनो अर्वाचीन इतिहास.)

× तदा मुदा तत्पदपद्मषट्पदोऽतिमेतखानः सुमगीरदोऽवदत्।
इहाऽस्ति शस्ताकृतिरागमवाग् व्रती महार्यतिर्हीर इति व्रतिप्रभुः॥
—विजयप्रशस्ति, १–१५।

इसी समय मेवडा जाति के मौंदी और कमाल नाम के अपने दो खास कर्म्मचारियों को बुला कर, अहमदाबाद के तत्कालीन सूबेदार (गर्वनर) शहाबुद्दीन अहमदखाँ के नाम पर एक फरमान पत्र लिख कर, गुजरात की ओर रवाना किये। इस फरमान में बादशाह ने सूबेदार को यह लिखा था कि-जैनाचार्य श्रीहीरविजयसूरि को, बडे आदर के साथ अपने पास-(दरबार-ए-अकबरी में) भेज दें। शहाबुद्दीन ने यह फरमान पाते ही अहमदाबाद के प्रधान प्रधान जैन श्रावकों को अपने पास बुलाये और उन्हें अकबर का वह फरमान दिखा कर सूरिमहाराज को, फतहपुर जाने के लिए प्रार्थना करने की, आज्ञा दी। सूरिजी उस समय गंधार-बंदर (जो भरूच जिले में, खंभात की खाडी के किनारे पर, बसा हुआ है और आज कल वेरान पडा है) में चातुर्मास रहे हुए थे। इस लिये श्रावक लोक गंधार पहुंचे और अकबर के आमंत्रण का सारा हाल कह सुनाया। साथ में, अपनी ओर से वहां पर जाने की प्रार्थना भी की। सूरिमहाराजने सोचा कि अकबर बडा सत्य-प्रिय है इस लिए उस के पास जाने से और सदुपदेश देने से बहुत कुछ लाभ हो सकता है। धर्म की ख्याति के साथ देश की भलाई भी हो सकती है। यह विचार कर, सूरिजीने श्रावकों की प्रार्थना स्वीकार की और संवत् १६३८ के मार्गशिर वदि ७ के दिन गंधार बंदर से प्रस्थान किया। अहमदाबाद के श्रावक लोक सूरिजी के साथ ही चले। सूरिमहाराज, अपने मुनिधर्मानुसार, नंगे पांव-पैदल ही चलते थे। गंधार से चलकर, मही नदी को पार किया और +वटदल (जिसे आज कल वटादरा कहते हैं) नामक गाँव में पहुंचे। यहां पर खंभात (जो कि निकट ही था) का जैन समुदाय सूरिजी के दर्शनार्थ आया। दो चार दिन ठहर कर सूरिजी ने आगे प्रयाण किया और थोडे ही दिनों में अहमदाबाद

+ क्रमाद् वटदले फुल्लाम्भोजे भृङ्ग इवागमत्।
स्तंभतीर्थस्य सङ्घेन तस्मिन्प्रभुरवन्द्यत ॥
हीरसौभाग्य, स. ११, श्लो. १०९।

पहुंचे। अहमदाबाद के लोकों ने उन का बड़े भारी समारोह से नगर प्रवेश कराया। शहाबुद्दीन ने सूरिजी को शहर में आये सुन कर आदर के साथ उन्हें अपने शाहीमहल में बुलवाये। बहुत से हाथी, घोड़े तथा हीरा, माणिक्य, मोती आदि बहुमूल्य चीजें सूरिजी को भेट कर बोला कि—" हे साधु महोदय! मुझे अपने स्वामी (अकबर) की आज्ञा है कि—" हीरविजयसूरिजी को जो कुछ चाहें वह भेट कर उन्हें मेरे पास आने की प्रार्थना करें।" इस लिये, आप इन चीजों को ले कर जिस तरह बादशाह मुझ पर खुश रहें वैसा कीजिए।" सूरीश्वर ने अपने मुनिजिवन का परिचय देते हुए खाँ से कहा कि—

रक्षामो जगदङ्गिनो न च मृषावादं वदामः कचि-
दादत्तं ग्रहयामहे मृगदृशां बन्धूभवामः पुनः।
आदध्मो न परिग्रहं निशि पुनर्नाश्नीमहि ब्रूमहे
ज्योतिष्कादि न भूषणानि न वयं दध्मो नृपैतान्वृतान् ॥
हीरसौभाग्य, ११ सर्ग, १९० श्लोक।

" हे नृप! संसार मात्र के प्राणियों की हम रक्षा करते हैं, कभी भी झूंठ नहीं बोलते, किसी के दिये बिना हम कोई चीज हाथ में नहीं लेते, जगत् की सभी स्त्रियों के हम भाई समान हैं, सुवर्ण, चाँदी, हीरा आदि बहुमूल्य वस्तु का हम स्वीकार नहीं करते, न कभी रात को कोई चीज मुंहमें डालते, न किसी आभूषण को छूते हैं और नाहीं, अपने निर्वाह या स्वार्थ के कारण मंत्र, तंत्र या मूहूर्तादि बताते हैं। ऐसी दशामें तुमारी भेट की हुई इन चीजों को ले कर हम क्या करें?" खाँ, सूरिजी के इन कठोर नियमों का हाल सुन कर चकित हुआ और बहुत बहुत उन की प्रशंसा करने लगा।

एते निःस्पृहपुङ्गवा यतिवराः श्रीमत्खुदारूपिणो
दृश्यन्तेऽत्र न चेदृशाः क्षितितले दृष्टा विशिष्टाः कचित्।

एवं तेन तदीयमुद्गलभटैः सम्यक् स्तवं प्रापिता
वाद्याडम्बरपूर्वकं निजगृहात् साध्वाश्रमे प्रेषिताः ॥

जगद्गुरु काव्य, १२९ ।

ये साधु महोदय निःस्पृहियों—त्यागियों में शिरोमणि और साक्षात् खुदा की मूर्ति हैं। इन के जैसा त्यागी महात्मा आज तक कहीं नहीं देखा। इस तरह का विचार कर खाँ ने, अपने सैनिकों के साथ, शाही बाजों के बजते हुए, सूरिमहाराज को, स्वस्थान पर पहुंचाये।

कुछ दिन अहमदाबाद में ठहर कर, जो दो आदमी अकबर का फरमान ले कर आये थे उन्हीं के साथ सूरिजी ने फतहपुर की तर्फ प्रयाण किया+। रास्ते में सबसे बड़ा शहर पहले पट्टन आया। यहां पर सूरिजी के बड़े सहाध्यायी और प्रखर पंडित उपाध्याय श्रीधर्मसागरजी तथा प्रधान पट्टधर श्रीविजयसेनसूरि आदि विशाल साधु-समुदाय सूरिजी के दर्शनार्थ उपस्थित हुआ। एक श्राविकाने इस शुभ प्रसंग पर हजारों रूपये खर्च कर बड़ा भारी उत्सव किया और कुछ जिनप्रतिमायें सूरिजी के हाथ से प्रतिष्ठित कराईं। पट्टन में केवल ७ रोज ठहर कर सूरिमहाराज आगे चले। धर्मसागरजी उपाध्याय को संघ की संभाल रखने के लिये यहां पर रक्खे गये। विजयसेनसूरि, सिद्धपुर तक सूरिजी को पहुंचाने को गये और बाद में वापस लौटे। सिद्धपुर में, इस कृपारसकोश के कर्ता शांतिचन्द्र पंडित सूरिजी की सेवा में हाजर हुए जिन्हें अतियोग्य समझ कर सूरिजी ने अपने साथ में लिये। महोपाध्याय श्रीविमलहर्षगणि, जो गंधार ही से सूरिजी के साथ थे, उन को अपने पहले अकबर से मिलने के लिये जल्दी के साथ, आगे रवाना किये। सूरिजी धीरे धीरे चलते हुए सरोतरा ग्राम में पहुंचे। यहां का ठाकुर अर्जुन, जो बड़ा डाकू था, सूरिजी को अपने मकान पर ले जा कर उन का

+ सूरिराजोऽथ संप्रस्थितस्तत्पुरात्सेवडाभ्यां पुरोगामुकाभ्यां युतः।

—हीरसौभाग्य, १२-१।

खूब आदर-सत्कार किया। सूरिजी ने उसे मीठा धर्मोपदेश दिया जिस से उस ने शिकार वगैरह कुव्यसनों का सर्वथा त्याग कर दिया। सूरिजी आबू-पहाड पर के प्रसिद्ध मंदिरों की यात्रा कर सिरोही पहुंचे। यहां का राजा सुलतान-सिंह बडे समारोह के साथ सूरिजी की पेशवाई में सामने आया और सारे नगर को खूब अच्छी तरह सजा कर खूब धूम-धाम से आचार्य-महाराज का प्रवेशोत्सव कराया। कुछ दिन ठहर कर सिरोही से आचार्य महाराज सादडी नगर को पहुंचे। महोपाध्याय कल्याण-विजयजी जो दक्षिण की ओर विचरते थे, सूरिजी को फतहपुर की तरफ जाते सुन कर, यहां पर दर्शनार्थ हाजर हुए। यहां से गमन कर सूरिजी राणपुर के धरणविहार की यात्रा कर आउआ नामक स्थान में पहुंचे। इस गॉव का मालिक जो ताल्हा सेठ था, उस ने आडंबर पूर्वक सूरिजी का शहर-प्रवेश कराया। जितने आदमी सूरिजी की अगवानी में गये थे उन सब को, ताल्हा सेठ ने एक एक फिरंगी सिक्का-जो उस समय वहां पर रुपये की जगह व्यवहार में लाया जाता था—भेट दिया। कल्याणविजय उपाध्याय, जो सादडी से यहां तक आचार्य महाराज को पहुंचाने आये थे, वापस लौटे। आउआ से चल कर कुछ ही दिन में सूरिजी मेडता नगर को पहुंचे। यहां का सुलतान साहिम सूरिजी की पेशवाई में आया। विमलहर्ष उपाध्याय जिनको सूरिजी ने, सिद्धपुर से, अपने पहले अकबर से मिलने के लिये आगे भेजे थे, वे किसी कारण वश यहां पर ठहरे हुए थे, आचार्य महाराज से मिले। नागोर और बीकानेर शहरों के संघ सूरिजी को वंदन करने लिये आये। विमलहर्ष उपाध्याय को सूरिजी ने आगे जाने की आज्ञा दे कर पंडित सिंहविमलगणि के साथ, जल्दी से रवाना किये और आप धीरे धीरे वहां से फतहपुर की तरफ बढने लगे। सूरिमहाराज सांगानेर स्थान पर पहुंचे जितने में तो उपाध्यायजी अकबर को आचार्यजी के आगमन की सूचना दे कर वापस आये और सूरिजी की सेवामें दाखल हुए।

बादशाह को सूरिमहाराज के सांगानेर पहुंचने की खबर मिलते

ही तुरन्त उसने थानसिंह, अमीपाल और मानू शाह आदि राजमान्य जैन साहुकारों को आज्ञा दी कि—सूरिमहाराज की अगवानी बड़े भारी ठाट-पाट से की जाय। बादशाह का हुक्म होते ही बड़े बड़े अफ़सर और धनाढ्य जैन अनेक हाथी, घोड़े, रथ और फौज ले कर सूरिजी के सामने सांगानेर पहुंचे। सूरिजी उन के साथ साथ फतहपुर के पास पहुंचे और शहर के बहार जगमल कछवाहा के महल में उस दिन ठहरे। कोई छः हिने की मुसाफिरी कर, संवत् १६३९ के ज्येष्ट वदि १३ शुक्रवार के दिन सूरिजीमहाराज फतहपुर पहुंचे। दूसरे दिन सवेरे ही अपने विद्वान् और तेजस्वी शिष्यों के साथ सूरिजी शाही दरबार में गये। इस समय मुनीश्वरजी के साथ-सैद्धान्तिक-शिरोमणि महोपाध्याय श्रीविमलहर्षगणि, अष्टोत्तरशतावधान विधायक और अनेक नृपमनरंजक श्रीशांतिचंद्रगणि, पण्डित सहजसागरगणि, हीरसौभाग्य-महाकाव्य के कर्ता के गुरु श्रीसीहविमलगणि, वक्तृत्व और कवित्व कला में अद्वितीय निपुण तथा विजयप्रशस्तिमहाकाव्य के रचयिता पंडित श्रीहेमविजयगणि, वैयाकरण चूडामणि पंडित लाभविजयगणि और सूरिजी के प्रधानभूत श्रीधनविजयगणि आदि १३[१] प्रधान शिष्य थे।

थानसिंह ने जा कर अकबर को सूरिजी के दरबार में आने की सूचना दी। बादशाह उस समय किसी अन्यावश्यकीय कार्य में गूंथा हुआ था इस लिये उसने अपने प्रिय-प्रधान शेख अबुलफजल को बुला कर सूरिमहाराज के आतिथ्य-सत्कार करने की आज्ञा दी। शेख सूरिजी के पास आ कर अकबर की आज्ञा के विषय में निवेदन किया और अपने महल में पधारने के लिये सूरिजी से प्रार्थना की। सूरिमहाराज उस के महल में पधारे और अपने योग्य उचित स्थान पर शेख की अनुज्ञा ले कर बैठ गये।

अबुल-फजल ने प्रथम बडी नम्रता के साथ सूरिजी से कुशल प्रश्नादि पूछे; और बाद में धर्मसंबंधी बातें पूछने लगा। कुरान और खुदा के विषय में उस ने अनेक सवाल जवाब किये जिन का बडी

[१] देखो, विजयप्रशस्ति-काव्य के ९ वें सर्ग के २८ वे काव्य की टीका।

योग्यता के साथ, युक्तिसंगत प्रमाणों द्वारा सूरिमहाराज ने खंडनात्मक जवाब दिया। । सूरिमहाराज के विचार सुन कर अबुल-फजल बड़ा खुश हुआ और बोला कि "आप के कथन से तो यही सिद्ध होता है कि, हमारे कुरान में बहुत सी तथ्यंतर बातें लिखी हुई हैं*।"

बातों ही बातों में मध्याह्न का समय हो गया। शेख सूरिजी से कहने लगाः—"महाराज! भोजन का समय हो चुका है। यद्यपि आप जैसे निरीह महात्माओं को शरीर की बहुत कम दरकार रहती है तो भी जगत् की भलाई के लिये थोड़ा बहुत इस का पोषण करना आवश्यक है। इस लिये किसी उचित प्रदेश में बैठ कर आप भोजन कर लीजिए।" शेख के कथन से सूरिजी पास ही में जो कर्णराजा का महल था उस में भोजन करने के लिये गये, जहां पर पहले ही कुछ साधु, गाँव में से भिक्षाचरी कर लाये थे। सूरिजी सदैव एक ही वार आहार लिया करते थे और वह भी प्रायः नीरस।

अपने कार्य से निवृत्त हो कर बादशाह दरबार में आया और सूरिजी को बुलाने के लिये अबुल-फजल के पास नौकर को भेजा। अबुल-फजल सूरिमहाराज को साथ में ले कर दरबार में हाजर हुआ। सूरिजी को आते देख कर अकबर अपने सिंहासन से उठा और कुछ कदम सामने जा कर बड़े भाव से प्रणाम किया। बादशाह के साथ उस के तीनों पुत्रों—शेख सलीम, मुराद और दानियाल—ने भी तद्वत् नमस्कार किया। सूरिजी ने सब को शुभाशीषें

। इन शंका-समाधानों का उल्लेख "हीरसौभाग्य-महाकाव्य" के, १३ वें, सर्ग में बड़े विस्तार के साथ किया गया है। जिज्ञासु पाठक वहां से देख लेवें।

* इदं गदित्वा विरते मुनीन्द्रे शेखः पुनर्वाचमिमामुवाच।
विभाव्यते तद्बहुशोऽत्र वीचीव तथ्येतरता तदुक्तौ॥

हीरसौभाग्य, १३-१४८।

दी। "गुरुजी ! चंगे तो हो+" यह कह कर बादशाह ने सूरिजी का हाथ पकड़ा और अपने खास कमरे में ले गया। वहां पर किमती गालिचे बिछे हुए थे इस लिये सूरिजी ने उन पर पैर रखने से इनकार किया। बादशाह को इस बात पर आश्चर्य हुआ और उस का कारण पूछा। सूरिजी ने कहा कि—"महाराज ! शायद इन के नीचे कोई चूंटी वैगरह प्राणि हों तो मेरे पैर के वजन से वे दब कर जायँ इस लिये हमारे शास्त्रों में मुनियों को ऐसे वस्त्राछन्न-प्रदेश पर पैर रखने की मनाई की गई है !" बादशाह ने सोचा कि ये महात्मा-पुरुष हैं और शायद इन्हों ने कहीं इन बिछानों के नीचे अपनी ज्ञानदृष्टि से प्राणियों का अस्तित्व जान तो न लिया हो। क्यों कि नही तो ऐसी पक्की जमीन पर चूंटियों वगैरह का संभव ही कैसे हो सकता है ? अकबर ने गालिचे का एक शिरा उठाया तो दैवयोग से उस के नीचे बहुत सी चूंटियें नज़र पड़ी ! बादशाह चकित हो गया। मुनीश्वर के उक्त वचन ने उस के दिल में बड़ा गहरा प्रभाव डाला। उस ने वहीं पर सुवर्णासन (सोने की कुर्सी) रखवाया और सूरिजी से उस पर बैठने की प्रार्थना की। सूरिमहाराज ने यह कह कि—"हम लोक किसी प्रकार के धातु का स्पर्श नहीं कर सकते" उस पर भी बैठने की अनिच्छा प्रदर्शित की। खैर, वहीं पर शुद्ध और कोरी जमीन पर अपना ही एक छोटा सा ऊन का कपड़ा बिछा कर सूरिजी बैठ गये। बादशाह भी उन के सामने वहीं गालिचे पर बैठ गया। अबुल-फजल और थानसिंह आदि अन्यान्य सभ्य भी अपने अपने उचित स्थान पर बैठ गये। अकबर ने सूरिजी से कुशल-प्रश्नादि पूछे और अपनी तर्फ से जो तकलीफ दी गई उस की माफी मांगी। सूरिमहाराज ने उचित वाक्यों द्वारा उस

\+ चङ्गा हो गुरुजीति वाक्यचतुरो हस्ते निजे तत्करम्

कृत्वा सूरिवराग्रिमाय सदनान्तर्वेश्मरुद्धाङ्गणे।

तावच्छ्रीगुरवस्तु पादकमलं नारोपयन्तस्तदा

वस्त्राणामुपरीति भूमिपतिना पृष्टाः किमेतद् गुरो !।

जगद्गुरु काव्य, १६८।

के आमंत्रण का समर्थन किया। बादशाहने पूछा कि आप कहां से और किस हालत मे चले आ रहे हैं? जवाब में सूरिजी ने कहा, कि-" आप की इच्छा के कारण हम गुजरात के गंधार बंदर से पैदल ही चले आ रहे हैं।" बादशाह यह सुन कर दंग हुआ और बोला कि-" अहो! मेरे लिये ऐसी वृद्धावस्था में, इतनी दूर से और इतने दिनों से आप चले आ रहे हैं, तथा ऐसा कठिन कष्ट उठा रहे हैं? क्या गुजरात के मेरे सूबेदार शहाबुद्दीन अहमदा खाँ ने अपनी कृपणता के कारण आप को सवार होने के लिये कोई सवारी वगैरह भी नहीं दी*। मुनीश्वर ने कहा-" उन्हों ने तो सब कुछ देना चाहा था परंतु हम अपने नियमानुसार ऐसी एक भी कोई चीज़ नहीं ले सकते।" बादशाह विस्मित हो कर थानसिंह की ओर देखने लगा और बोला कि—" थानसिंह! मै तो महात्मा के इस जगद्विलक्षण और अति कठिन जीवन से अनभिज्ञ था परंतु तूं तो अच्छी तरह परिचित था। तो फिर मुझ को पहले ही—सूरिमहाराज को इधर का आमंत्रण देने के समय में ही-ये सब बातें क्यों न जनादीं जिस से इन महात्माओं को अपने पास बुलाने का इतना कठिन कष्ट न दिया जाता और इन की आत्म-समाधि में नाहक का विघ्न डाल कर मै पाप का हिस्सेदार भी न बनता!" थानसिंह, अकबर के मुंह के सामने टगर टगर देखने लगा और इस का क्या उत्तर दिया जाये यह सोचने लगा। कुछ ही मिनिट बाद, बादशाह स्वयं फिर—थानसिंह को उद्दिश्य कर—बोला कि—" हाँ, मैं तेरी बनियासाई बाजी समझ गया हूं। तूं ने खुद अपना मतलब साधने के इरादे से, इन बातों से मुझे अज्ञान रक्खा है। क्यों कि सूरि-महाराज आज तक कभी इधर नहीं आये इस लिये उन की सेवा-शुश्रूषा करने का महान् लाभ तेरे जैसे गुरु भक्त को नहीं मिला। मेरे बुलाने से जो सूरिमहाराज का इधर आगमन हो और जिस का

* भूपोऽप्युवाचेति न साहिबाख्यखानेन युष्मभ्यमदायि किञ्चित्।
तुरङ्गमस्यन्दनदन्तियानजांबूनदाद्यं दृढमुष्टिनेव ॥ १८६ ॥

हीरसौभाग्य, ११ सर्ग।

लाभ विशेष कर तुझे और तेरे जातिभाईयों को मिले, तो इस से अधिक सौभाग्य की बात, तुमारे लिये, और क्या हो सकती है?" बादशाह के इन बचनों से सारा ही सभा-मण्डल खुश खुश हो गया।

अकबर ने सूरिजी से रास्ते का हाल जानना चाहा परन्तु उस का ठीक उत्तर उन की ओर से न मिलता देख, पास के किसी अधिकारी को पूछा कि "सूरिमहाराज को लेने के लिये कौन आदमी गये थे?—जो गये हों उन्हें यहां बुलाओ।" अधिकारी ने जवाब दिया कि-"हुजूर मौन्दी और कमाल नाम के, आप के खुद दूत गये थे×"। बुलाने पर वे तुरन्त हाजर हुए। बादशाह ने उन से सूरिमहाराज की सारी मुसाफिरी का हाल पूछा। उन्हों ने क्रम से, संक्षेप मे, वे सब बातें कह सुनाईं जो सूरिजी के साथ चलते हुए रास्ते में उन्हों ने अनुभूत की थीं। वे बोलेः—"हुजूर! ये महात्मा, आज कोई लग भग छः महिने हुए गंधार-बंदर से पैदल ही चले आ रहे हैं। अपना जितना सामान है सारा आप ही उठा कर चलते हैं। और किसी को नहीं देते। भिक्षा, गाँव में से, घर घर से, मांग लाते हैं और जैसा मिला वैसा खा लेते हैं। अपने निमित्त बनी हुई किसी चीज को छूते तक भी नहीं। सदा नीचे जमीन पर ही सोते हैं। रात को कोई भी वस्तु मुंह में नहीं डालते। चाहे कोई इन्हें पूजे और चाहे कोई गालियां दे, इन के मन दोनों समान हैं। ना किसे कभी वर देते हैं और नाही कभी शाप।" इत्यादि बातें सुन कर अकबर के साथ सारा ही दरबार आश्चर्य और आनंद मे निमग्न हो गया। अकबर सूरिमहाराज पर मुग्ध हो गया और अनेक प्रकार से उन की प्रशंसा करने लगा।

इस तरह परस्पर आलाप-संलाप होने बाद अकबर अकेले सूरिजी को एकान्त-महल में ले गया और अन्यान्य सभ्यों को, शां-

× मौन्दी-कमालाविति नामधेयौ निदेशतः शासनहारिणौ वः।
इतोऽजिहानामिव मूर्तिमन्तौ लेखौ वलेखाविव कामचारौ॥
हीरसौभाग्य काव्य, १३—२०७।

तिचन्द्र आदि मुनिवरों के साथ विद्वद्गोष्ठी करने की आज्ञा दे गया। उस एकान्त-भवन मे सूरिमहाराज ने अकबर को अनेक प्रकार का धर्मोपदेश दिया। ईश्वर, जगत्, सुगुरु और सद्धर्म के विषय में भिन्न भिन्न दृष्टि से सूरिजी ने अपने विचार प्रदर्शित किये जिस से अकबर के दिल मे बहुत कुछ सन्तोष हुआ। अभी तक तो वह सूरिजी के चारित्र पर ही मुग्ध हो रहा था परन्तु अब तो उन की विद्वत्ता का भी वह कायल हुआ। धर्म संबंधी बात चीत हो चूकने पर, अकबर ने सूरिजी की परीक्षा करने के लिये पूछा कि "महाराज! आप सर्व शास्त्र के पारगामी हैं-आप से कोई बात छीपी नहीं है। इस लिये कृपा कर कहिए कि-मेरी जन्म कुंडलि में, मीन राशि पर जो शनैश्चर आया हुआ है, उस का मुझे क्या फल होगा। *" सूरिजी बोले:—"पृथ्वीश! यह फलाफल बताने का काम गृहस्थों का है। जिन्हें अपनी आजीविका चलानी होती है वे इन बातों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। हमे तो केवल मोक्ष मार्ग के ज्ञान की अभिलाषा रहती है जिस से वह जिन शास्त्रों से प्राप्त हो सकता है उसी के विषय में हमारा श्रवण, मनन और कथन हुआ करता है×" अकबर ने अनेक बार इस प्रश्न का उच्चारण किया परंतु सूरिजी इसी एक उत्तर के सिवा और कुछ भी अक्षर नहीं बोले। सायंकाल का समय हो आया देख कर बादशाह और मुनीश्वर अपने स्थान से ऊठे और सभा मंडप मे पहुंचे। इधर भी शेख अबुल-फजल और अन्यान्य विद्वान् सूरिजी के शिष्यो के साथ अनेक प्रकार के वार्ता-विनोद और धर्म-विवाद कर आनन्दित हो रहे थे। नृपति और मुनिपति के आते ही सब मौन हुए। बादशाह ने अबुल-फजल को लक्ष्य कर सूरिजी की विद्वत्ता, निःस्पृहता और पवित्रता की बहुत

* पुरेऽनयीवावानिमानुपेयिवान य एष मीने तरणेस्तनूरुहः।
स मत्सरीवापकरिष्यति प्रभो क्षितेः पतीनामुत नीवृतां किमु॥

× गुरुर्जगौ ज्यौतिषिका विदन्त्यदो न धार्मिकादन्यदवैमि वाङ्मयात्।
यतः प्रवृत्तिर्गृहमेधिनामियं न मुक्तिमार्गे पथिकीभवृषाम॥

हीरसौभाग्य काव्य, सर्ग १४।

बहुत सराहना की। शेखने भी सूरिमहाराज के शिष्यों की बड़ी तारिफ की। सभा में बादशाह ने सूरिजी के शिष्यों की संख्या पूछी परंतु सूरि महाराज ने "हां, कुछ थोडे से है" कह कर अपनी विभुता नहीं बताई। बादशाह ने पहले ही सुन रक्खा था कि सूरिमहाराज के दो हजार शिष्य है; इस लिये उसने आप ही उतने बताये, जिस का समर्थन थानसिंह ने "जी हुजूर" कह कर किया। सभा में जितने शिष्य बैठे हुए थे उन के नाम बादशाहने पूछे; जिन का उत्तर एक दूसरे शिष्य ने, एक दूसरे का नाम बता कर दिया।

पद्मसुन्दर नामक-नागपुरीय तपागच्छी-जैन यति पर, अकबर का, पूर्वावस्था में बडा प्रेम था। अकबर उसे सदा अपने पास ही रखता था। उस के पुस्तकालय में हिन्दु-और जैनसाहित्य की बहुत पुस्तकें थीं। यति के मर जाने पर वे सब पुस्तकें अकबर ने अपने महल में रख्खी थीं, यह विचार कर कि जब कोई सब से अच्छा महात्मा मुझे मिलेगा तब उसे ये भेंट करूंगा। अकबर की दृष्टि में हीरविजयसूरि सर्वोच्च साधु मालूम दिये इस लिये उसने अपने बडे पुत्र युवराज सलीम सुलतान द्वारा वे सब पुस्तकें महल में से वहां पर मंगवाईं। खानखाना नामक अफसर ने पेटियों में से पुस्तकें निकाल निकाल कर बादशाह के सामने रक्खीं×। बादशाह ने सूरिजी से, पुस्तकों का पूर्व-इतिहास कह कर उन्हे लेने की प्रार्थना की। अकबर बोला कि—"आप सर्वथा निःस्पृह महात्मा हैं इस लिये और कोई मेरे पास ऐसी चीज नहीं है जो आप को भेंट करने योग्य हो। केवल एक मात्र ये पुस्तकें ही ऐसी हैं जो आप को ग्राह्य हों। इस लिये इन्हें स्वीकार कर मुझे उपकृत कीजिए।" सूरिजी ने पुस्तकें लेने का इनकार कर कहा कि—"राजेश्वर! हम लोकों को जितनी पुस्तकें चाहिए उतनी तो हमारे पास है। फिर

× गृहाद्थानायितमङ्गजन्मना स खानखानेन च मुक्तमग्रतः।
महीमरुत्वान्प्रमदाद्विवोपदां मुनीशितुर्ढौकयति स्म पुस्तकम्।

हीरसौभाग्य, सर्ग काव्य, १४।

इन्हें, बिन जरूरत, ले कर हम क्या करें ? यह भी एक प्रकार का परिग्रह ही है परंतु आत्मसाधन मे मुख्य सहायक होने के कारण इन का रखना हमारे लिये उचित है । परंतु, आवश्यकता से अधिक रखना ममत्व का कारण होने से हमें इन पुस्तकों की जरूरत नहीं है । " सूरिमहाराज के बहुत इनकार कर ने पर भी अन्त में अबुल-फजल ने बीच में पड कर उन्हें पुस्तकें लेने से बाध्य किये । सूरिजी ने उन का सादर स्वीकार कर " अकबरीय-भाण्डागार " के नाम से आगरे में रख दीं ।

समय हो जाने से सूरीश्वर ने स्वस्थान पर जाने की इजाजत मांगी । बादशाह ने थानसिंह को बुला कर कहा कि " मेरे जो खुद शाही बाजे है उन के साथ, बडी धूमधाम पूर्वक, मुनीश्वर को अपने स्थान पर पहुंचा दो* । " शाही हुक्म होते ही सब तैयारी की गई । शाहीफौज, बडे बडे अफसर और अनेक प्रकार के वादित्रों के साथ सूरिमहाराज अपने स्थान पर पहुंचे । जैन लोकोंने इस बात की बडी भारी खुशी मनाई और हजारों रुपयें गरीब-गुरबों को बाँट दिये गये ।

कुछ दिन फतहपुर ठहर कर मुनीश्वर चातुर्मास करने के लिये आगरा को गये । संवत् १६३९ का चातुर्मास वहीं बिताया । मार्गशिर महिने मे सूरिजी शोरीपुर-तीर्थ की यात्रा करने को गये । कुछ समय तक इधर उधर घूम कर फिर वापस आगरा आये । वहां पर चिंतामणि-पार्श्वनाथ की प्रतिष्ठा की । थोडे दिन ठहर कर, आगरा से फिर फतहपुर पहुंचे । सूरिजी को शहर मे आये सुन कर अकबर ने फिर उन से मिलने की इच्छा प्रकट की । अबुल-फजल के महलों मे, दूसरी बार सूरि महाराज मुगल-सम्राट् से मिले ।

* मर्दीयतूर्यादिनिनादसादरं जगज्जनानन्दिमहेन मेदुरम् ।
स्वमालयं लम्भय साधुसिन्धुरं नटं शशीवामृतवाहिनीवरम् ॥

हीरसौभाग्य काव्य, १४ सर्ग ।

घंटों तक धर्म-चर्चा होती रही। सूरिजी ने प्रजा और प्राणियों के हित के लिये बादशाह को अनेक प्रकार का सद्बोध दिया। मद्य और मांस का सेवन नहीं करने के लिये भी उपदेश दिया गया। पहली मुलाकात के समय, सूरिजी की निःस्वार्थ वृत्ति ने अकबर के दिल में जिस सद्भाव के बीज को बोह दिया था वह इस समय की मुलाकात मे अंकुरित हो गया। बादशाह बोला—" मुनीश्वर! आपने जो जो बातें मुझे, अपने हित के लिये कहीं हैं वे बिल्कुल ठीक हैं और आप के कथन का मैं अवश्य आदर करूंगा। मैंने आप को बडी दूर से, बहुत कष्ट दे कर बुलाये हैं और आपने भी अपना परोपकार-भाव, यहां आकर स्पष्ट रूप से प्रकट किया है। आपने जो जो सदुपदेश मुझे दिये हैं वे अमूल्य हैं; मैं आप की इस कृपा का बडा ही ऋणी—कर्जदार-हूं। मेरी यह इच्छा है कि मेरे आधिपत्य में गाँव, नगर, देश, हाथी, घोडे, सुवा, चांदी आदि जितनी चीजें हैं उन में से जो आप की मर्जी में आवें उसे स्वीकार कर मेरे सिर पर से इस उपकार के भार को कुछ कम कीजिए। सूरिमहाराज ने कहा—" शाहंशाह! मेरे जीवनोद्देश और मुनिधर्म से आप बहुत कुछ परिचित हो चुके हैं इस लिये इन चीजों के लेने का मुझ से आग्रह करना निरर्थक है। मुझे इच्छा है केवल आत्म-साधन करने की। इस से यदि वैसी चीज आप मुझे दें कि जिस से मेरा आत्म-कल्याण हो, तो मैं उसे बडे उपकार के साथ स्वीकार लूंगा।" बादशाह इस के उत्तर में क्या कह सकता था? वह चुप कर गया। अकबर को मौन हुआ देख फिर मुनिमहाराज बोले—" आप मुझे जो कुछ देना चाहते हैं उस के बदले में, मेरे कथन से, जो कैदी वर्षों से कैदखाने मे पडे पडे सड रहे हैं, उन अभागे पर दया ला कर, छोड दीजिए। जो बेचारे निर्दोष पक्षी बे गुनाह पींजडों में बन्ध किये गये हैं उन्हे उडा दीजिए। आप के शहर के पास जो डावर नाम का १२ कोस लंबा चौडा तालाब है, कि जिस में रोज हजारों जालें डाली जाती है, उन्हें बंध कर दीजिए। हमारे पर्युषणों के पवित्र दिनों मे आप के सारे राज्य में, कोई भी

मनुष्य, किसी प्रकार के प्राणिकी हिंसा न करें ऐसे फरमान लिख दीजिए।" बादशाह ने कहा—"महाराज! यह तो आप ने अन्य जीवों के मतलब की बात कही है। आप अपने लिये भी कुछ कहें*।" सूरिजी ने उत्तर दिया—"नरेश्वर! संसार के जितने प्राणि हैं उन सब को मैं अपने ही प्राणों के समान गिनता हूं। इस लिये उन के हित के लिये जो कुछ किया जायगा वह मेरे ही हित के लिये किया गया है; ऐसा मैं मानूंगा।" बादशाह ने सूरिजी की आज्ञा का बडे आदर-पूर्वक स्वीकार किया। वहां बैठे ही बैठे, कैदखाने में जितने कैदी थे उन्हें छोड देने का और पीजडों मे जितने पक्षी थे उन्हे उडा देने का हुक्म दे दिया। डाबर तालाव में जाले डालने की मनाई भी की गई। पर्युषणों के आठ ही दिन नहीं परंतु उन में ४ दिन बादशाह ने अपनी ओर के भी मिला कर १२ दिन तक जीववध के बंध करने के ६ फरमान लिख दिये। जिन का व्योरा इस प्रकार है:—१ ला सूबे गुजरात का, २ रा सूबे मालवे का, ३ रा सूबे अजमेर का, ४ था दीली और फतहपुर का, ५ वा लाहोर और मुलतान का तथा ६ वा पांचों सूबों का, सूरिजी के पास रखने का। बादशाह बोलाः—

पलाशतां बिभ्रति यातुधाना इवाखिला अप्यनुगामिनो मे।
अमारिरेषा न च रोचते क्वचिन्मलिम्लुचानामिव चन्द्रचन्द्रिका॥
शनैः शनैस्तेन मया विमृश्य प्रदास्यमानामथ सर्वथैव।
दत्तामिवैतामवयान्तु यूयममारिमन्तर्महतेव कन्या॥

हीरसौभाग्य, स. १४, प. १९९-२००।

"मुनीश्वर! मेरे जितने अनुगामि—नौकर हैं वे सब मांसाहारी हैं इस लिये उन्हें यह जीवहत्या के बंध कर

* इयं तु पूज्येषु परोपकारिता प्रसादनीयं निजकार्यमप्यथ।
तंमूचिवानेष यदङ्गिनोऽखिलानसूनिवावैमि ततः परोऽस्तु कः॥
हीरसौभाग्य, स. १४, श्लो १७९।

ने की बात रुचती नहीं है इस लिये मैं धीरे धीरे, इतने ही दिन नहीं परंतु और भी अधिक दिन आप को दूंगा-अर्थात् अधिक दिनों तक जीव वध न किया जाने के फरमान लिख दूंगा। पहले की तरह अब मैं शिकार भी न करुंगा। संसार के पशु-प्राणि सुखपूर्वक मेरे राज्य में, मेरी ही तरह रहें ऐसा काम करुंगा*।" यह कह कर बादशाहने सूरिजी की परोपकारिता की वारंवार प्रशंसा की और उन्हें "जगद्गुरु ×" की महान् उपाधि (पद्वी) दी। कुछ बडे बडे कैदियों को अपने पास बुला कर सूरिजीके पगों में उन का मस्तक टिकवाया और उन्हें छोड जाने का आनंद-समाचार सुनाया। बाद में अकबर वहां से ऊठ कर डाबर-तालाव के किनारे गया। साथ में सूरिजी के प्रधानभूत शिष्य धनविजयजी को ले गया। वहां पर उन की समक्ष, सब पक्षियों को पीजडों में से निकाल निकाल कर आकाश में उडा दिये। सूरिजी वहां से ऊठ कर शाही बाजों के बजते हुए अपने उपाश्रय में पहुंचे। श्रावकों ने उस समय जो आनंद और उत्सव मनाया उस का वर्णन नहीं किया जाता। मेडतीया शाह सदारंग ने, उस खुशाली में हजारों रुपये गरीब गुरबों को और सैंकडों हाथी घोडे याचकों को दान में दे दिये। शाह थानसिंह ने अपने बनवाये हुए मंदिर में जिनप्रतिमा की प्रतिष्ठा कराने के निमित बडा भारी महोत्सव प्रारंभ किया। प्रतिष्ठा के साथ श्रीशांतिचन्द्रजी को "वाचक (उपाध्याय)" पद भी प्रदान किया गया। थानसिंह ने उस समय अगणित द्रव्य व्यय किया। शाह दुर्जणमल्ल ने भी एक वैसा ही दूसरा प्रतिष्ठा महोत्सव किया। उस साल का-संवत् १६४० का-चातुर्मास्य सूरी-

* प्राग्वत्कदाचिन्मृगयां न जीवहिंसां विधास्ये न पुनर्भवद्वत्।
सर्वेऽपि सत्त्वाः सुखिनो वसन्तु स्वैरं रमन्तां च चरन्तु मद्वत्॥

× गुणश्रेणी मणिसिन्धोः श्रीहीरविजयप्रभोः।
जगद्गुरुरिदं तेन विरुदं प्रददे तदा॥

हीरसौभाग्य

करने वहीं व्यतीत किया। पर्युषणा के दिनों में शाही हुक्म से सारे राज्य में, क्या हिंदू और क्या मुसलमान? सभी के लिये जीव-वध के मनाई के ढंढोरे पीटे गये। अशक्य जैसी बात का होना देख कर सभी लोकों को आश्चर्य हुआ। जैनधर्म की करुणा का प्रचंड प्रवाह, कुछ देर के लिये, सर्वत्र फैल गया। असंख्य प्राणियों को अभय-दान मिला। जैन प्रजा को फिर एक बार परमार्हत महाराजाधिराज श्रीकुमारपाल का स्मरण हो आया।

चतुर्मासी की समाप्ति अनंतर सूरीश्वर वहां से विदा हुए। बादशाह की इच्छा से शांतिचन्द्र उपाध्याय वहीं रक्खे गये। जगद्गुरु आगरे हो कर मथुरा गये। और वहां के प्राचीन जैन-स्तूपों की यात्रा की। मथुरा से गवालियर पहुंचे। वहां के गोपगिरि-पर्वत पर आई हुई विशाल-काय और भव्याकृति जिनमूर्ति के, जो "बावनगजा" के नाम से प्रसिद्ध है, दर्शन किये। गवालियर से जगद्गुरु अलाहाबाद पधारे और सं० १६४१ का वर्षा-समय वहीं बिताया। शीत-काल में वहां से प्रयाण कर, रास्ते में ठहरते और असंख्य मनुष्यों को सदुपदेश देते पुनः आगरा आये। सं० १६४२ के वर्षाकीय चार महिने वहीं ठहरे। सूरिजी के उपदेश से लोकों ने अनेक धर्मकृत्य और पुण्य कार्य किये जिस से जैन धर्म की बड़ी प्रभावना हुई। हजारों हिन्दू और मुसलमानों ने मांसाहार और मद्यपान का त्याग किया।

सूरि महाराज की अवस्था इस समय कोई ६० वर्ष की थी। शरीर-स्थिति दिन प्रति दिन शिथिल होती देख उन्हों ने वापस गुजरात में जाना चाहा और वहां के शत्रुंजय, गिरनार आदि पवित्र तीर्थों की यात्रा कर, वहां पर किसी पावन स्थान पर शेष जीवन व्यतीत करना चाहा। सूरीश्वर ने अपनी यह इच्छा बादशाह से जनाई और गुजरात में जाने की इजाजत मांगी। साथ में आपने एक यह अर्ज भी बादशाह से कराई कि "गुजरात में शत्रुंजय, गिरनार, आबू, तारंगा वगैरह जो हमारे बड़े पवित्र तीर्थ हैं उन

पर, कितनेक अविचारी मुसलमान, हम लोगों के दिल को दुःख पहुंचे वैसा हिंसादि कृत्य कर, तीर्थ की पवित्रता को भ्रष्ट करते रहते हैं और उन पर अपना अनुचित हस्तक्षेप करते रहते हैं। इस लिये बादशाह की हुजूर में अर्ज है कि इन तीर्थों के विषय में एक ऐसा शाही फरमान हो जाना चाहिए कि जिस से कोई भी मनुष्य, उन तीर्थों पर किसी प्रकार का अनुचित दखल और अयोग्य काम न करने पावे।" कहने की आवश्यकता नहीं कि इस अर्जी के मुताबिक, शाही फरमान के लिखे जाने में कुछ भी विलम्ब हुआ हो। बादशाह ने अपने फरमान में केवल गुजरात के तीर्थों के विषय ही में नहीं परन्तु बंगाल और राजपूताना में भी समेतशिखर (पार्श्वनाथ-पहाड) और केसरीया (धूलेव) वगैरह जितने जैनश्वेताम्बर-संप्रदाय के तीर्थ हैं उन में से किसी पर भी कोई मनुष्य अपना दखल न करे और कोई जानवर वगैरह न मारे तथा ये सब स्थान जैनाचार्य श्रीहीरविजयसूरि को सौंपे गये हैं: ऐसा लिख कर दिया:—(देखो फरमान-नं. २ ग) सूरिमहाराज, अकबर की अनुमति पा कर तथा इस फरमान को ले कर, अपने शिष्यों के साथ गुजरात की तरफ रवाना हुए।

ऊपर लिखा गया है कि—जगद्गुरु ने, फतहपुर से चलते समय बादशाह की इच्छानुसार श्रीशांतिचन्द्र उपाध्याय को वहीं पर—अकबर के दरबार ही में—रख दिये थे। उसी दिन से उपाध्यायजी निरंतर बादशाह के पास जाने लगे और विविध प्रकार का उसे सदुपदेश देने लगे। प्रसंग वश और भी अनेक प्रकार का वार्तालाप होने लगा। शांतिचन्द्रजी बडे भारी विद्वान् और एक ही साथ एक सौ आठ अवधान करने की अद्भुत शक्ति धारण करने वाले अप्रतिम प्रतिभावान् थे। उन्हो ने, इस के पहले, अपनी विद्वत्ता और प्रतिभा द्वारा राजपूताना के अनेक राजाओं का मनरंजन किया था। बहुत से विद्वानों के साथ वाद-विवाद कर जयपताका प्राप्त की थी। ईडर-गढ के महाराय श्रीनारायण की सभा में वहां

के दिगंबर भट्टारक वादीभूषण के साथ विवाद कर उसे पराजित किया था। वागड के, घटशिल नगर में, वहां के अधिपति और जोधपुर के महाराज श्रीमल्लदेव के भ्रातृव्य, राजा सहस्रमल्ल की सन्मुख, गुणचंद्र नामक दिगंबराचार्य को भी परास्त किया था। इस तरह अनेक नृपतियों को उन्हों ने शास्त्रार्थ और शतावधानादि द्वारा अपने प्रति सद्भाव धारण करने वाले बनाये थे। अकबर भी उन की विद्वत्ता से बडा खुश हुआ। ज्यों ज्यों उस का परिचय उपाध्यायजी से अधिक होता गया त्यों त्यों वह उन पर विशेष अनुरक्त होता गया। बादशाह के सौहार्द और औदार्य से प्रसन्न हो कर उपाध्यायजी ने उस की प्रशंसा में इस "कृपारसकोश" की रचना की। १२८ पद्य के इस छोटे से काव्य में, अकबर के शौर्य, औदार्य और चातुर्य आदि गुणों का संक्षेप में, परन्तु बडी मार्मिकता से, वर्णन किया गया है। अकबर इस कृपारस का श्रवण द्वारा पान कर बहुत तृप्त हुआ। इस तृप्ति के उपलक्ष्य में, उस ने हीरविजयसूरि की जगत् की भलाई के वास्ते जो जो शुभ इच्छायें थीं वे सब, उपाध्यायजी के कथन से, पूर्ण कीं। इस ग्रंथ के, अंत के, १२६-७ वें पद्यों में स्पष्ट लिखा है कि "इस बादशाह ने जो जजिया कर माफ किया, उद्धत मुगलों से जो मंदिरों का छुटकारा हुआ, कैदमें पडे हुए कैदी जो बन्धन रहित हुए, साधारण राजगण भी मुनियों का जो सत्कार करने लगा, साल भर में छः महिने तक जो जीवों को अभयदान मिला और विशेषकर, गायें भैंसें बैल और पाडे आदि जो पशु कसाई की छुरि से निर्भय हुए; इत्यादि शासन की–जैनधर्म की समुन्नति के जगत्प्रसिद्ध जो जो कार्य हुए उन सब में यही ग्रंथ (कृपारस कोश) उत्कृष्ट निमित्त हुआ है—अर्थात् इसी ग्रंथ के कारण उपर्युक्त सब कार्य बादशाह ने किये हैं।"

१२१ वें पद्य का

भूयस्तरां परिचितैर्विदितस्वभावः

स्वामी नृणामयमयाचि मया कृपार्थम्।

यह पूर्वार्द्ध खास ध्यान खींचने लायक है। उपाध्यायजी कहते हैं कि—मैंने बादशाह के पास इन सुकृत्यों की जो याचना की है वह एक दम नहीं की। मेरा बादशाह से बहुत बहुत परिचय हुआ और मैंने उस के स्वभाव को ठीक ठीक जान लिया। जब बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और मैंने यह निश्चित कर लिया कि इस समय इस से जो कुछ कहा जायगा वह स्वीकार करेगा तब, मैंने उस के पास प्राणियों के हित के लिये, इन बातों की याचना की।

बादशाह के ये सब कार्य कर देने पर, सूरिजी को इन की खुश खबर देने के लिये तथा उन के दर्शन करने के लिये उपाध्यायजी ने अकबर से गुजरात में जाने की इजाजत मांगी। शांतिचन्द्रजी ने, अपने ही समान विद्वान् और अपने खास सहाध्यायी भानुचन्द्र नामक पंडित को अकबर के दरबार में छोड कर, आप गुजरात को रवाना हुए। फतहपुर से चल कर कुछ महिनों की मुसाफिरी बाद उपाध्यायजी पट्टन पहुंचे और वहां पर जगद्गुरु के दर्शन किये। बादशाह के उन सब सुकृत्यों का हाल, जो उस ने उपाध्यायजी के कथन से किये थे, सूरिजी को कह सुनाया और वे फरमान पत्र भी उन के चरणों में भेंट किये जिन में जजिया कर के उठा देने का तथा वर्ष भर में छः महिने जितने दिनों तक जीव वध के न किये जाने का हाल और हुक्म था। सूरिजी को यह जान कर जितनी खुशी हुई उस का उल्लेख करने की इस लेखिनी में ताकात नहीं। वे उपाध्यायजी पर बडे प्रसन्न हुए और उन के इन कार्यों की बहुत बहुत प्रशंसा करने लगे। जो जो दिन जीव-वध के लिये निषिद्ध किये गये उन का जिक्र "हीरसौभाग्य-काव्य" (सर्ग १४) में इस प्रकार किया हुआ है—

> श्रीमत्पर्युषणादिना रविमिताः सर्वे रवेर्वासराः
> सोफीयानदिना अपीदृदिवसाः संक्रान्तिघस्त्राः पुनः।
> मासः स्वीयजनेर्दिनाश्च मिहिरस्यान्येऽपि भूमीन्दुना
> हिन्दुम्लेच्छमहीषु तेन विहिताः कारुण्यपुण्यापणाः॥

तेन नवरोजदिवसास्तनुजजनूं रजबमासदिवसाश्च ।
विहिता अमारिसहिताः सलतास्तरवो घनेनेव ॥

अर्थात्—पर्युषणा के १२ दिन, सभी रविवार, सोफीयान के दिन, ईद के दिन, संक्रान्ति के दिन, बादशाह के जन्म का सारा महिना, मिहिर के दिन, नवरोज के दिन और कुछ रजब महिने के दिन। इन सब दिनों की गिनती की जाय तो, सब मिल कर छः महिने जितने होते हैं।

महोपाध्याय श्रीधर्मसागरगणि ने भी अपनी "तपागच्छ-गुर्वावली"—जो संवत् १६४८ के आस पास बनाई गई है—में यह बात संक्षेप में परन्तु, स्पष्ट रूप से लिखी है—

"अथ पुरा श्रीसूरिराजैः श्रीसाहिहृदयालवालारोपिता कृपालतोपाध्यायश्रीशान्तिचन्द्रगणिभिः स्वोपज्ञकृपारसकोशाख्यशास्त्रश्रवणजलेन सिक्ता सती वृद्धिमती बभूव । तदभिज्ञानं च श्रीमत्साहिजन्मसम्बन्धी मास , श्रीपर्युषणापर्वसत्कानि द्वादशदिनानि, सर्वेऽपि रविवासरा , सर्वसंक्रान्तितिथयः, नवरोजसत्को मास , सर्व ईदीवासरा , सर्वे मिहिरवासरा , सोफीआनवासराश्चेति षाण्मासिकामारिसत्कफुरमानं, जीजीआभिधानकरमोचनसत्कानि फुरमानानि च श्रीमत्साहिपार्श्वात्समानीय धरित्रीदशे श्रीगुरूणां प्राभृतीकृतानीति । एतच्च सर्वं जनप्रतीतमेव ।"

उपाध्याय श्रीशांतिचन्द्रजी के चले आने बाद भानुचंद्र और सिद्धिचंद्र—दोनों गुरु शिष्य—(जो बाणभट्ट की विश्वविख्यात कादंबरी के प्रसिद्ध टीकाकार हैं) अकबर के दरबार में रहे और शांतिचंद्र ही के समान बादशाह से सम्मानित हुए। भानुचंद्र ने अकबर को "सूर्यसहस्रनाम" पढाया। सिद्धिचंद्र भी शांतिचंद्र ही के समान शतावधानी थे इस से इन की प्रतिभा के अद्भुत प्रयोग देख कर बादशाह ने इन्हें "खुशफहेम" की मानप्रद पढी दी। ये फारसी-भाषा के भी अच्छे विद्वान् थे इस लिये और भी बहुत से अकबर के दरबारियों के साथ इन की अच्छी प्रीति हो गई थी। इन

गुरु-शिष्यों द्वारा विजयसेनसूरि, जो हीरविजयसूरि के उत्तराधिकारी आचार्य थे, की विद्वत्ता का हाल सुन कर अकबर ने उन्हें मिलने के लिये लाहोर बुलवाये। अकबर का यह आमंत्रण आया तब ये जगद्गुरु के साथ गुजरात के राधनपुर शहर में वर्षाकाल रहे हुए थे। हीरविजयसूरि ने इन्हें लाहोर जाने की आज्ञा दी और तदनुसार विहार कर ये वहां पहुंचे। बादशाह ने इन का भी यथेष्ट सन्मान किया और मुलाकात ले कर बडा खुश हुआ। लाहोर में इन्हों ने अकबर के आग्रह से, भानुचंद्रजी को उपाध्याय-पद प्रदान किया। इस पद्वी के महोत्सव में श्रावकों ने बडा भारी जलसा किया जिस में शेख अबुल-फजल ने भी ६०० रूपये और कितने ही घोडे आदि याचकों को दान में दिये।

श्रीमत्सूरिवरो व्यधत्त वसुधावास्तोष्पतेराग्रहे-

णोपाध्यायपदस्य नन्दिमनघां श्रीभानुचन्द्रस्य सः।

शेखो रूपकषट्शती व्यतिकरे तत्राश्वदानादिभि-

र्भक्त श्राद्ध इवार्थिना प्रमुदितो विश्राणयामासिवान् ॥

हीरसौभाग्य।

विजयसेनसूरि ने अकबर के दरबार में बहुत से विद्वानों के साथ वाद कर विजय-पताका प्राप्त की। इन के शिष्य नन्दिविजय, जो भी अप्रतिम प्रतिभाशाली पुरुष थे, ने अकबर के सामने अति उत्कट ऐसे आठ अवधान किये। बादशाह के सिवा मारवाड के राजा मल्लदेव के पुत्र उदयसिंह, कच्छ के नृपति मानसिंह, खानखाना, शेख अबुलफजल, आजमखान और जालोर के गजनीखान आदि बहुत से राजा महाराजा और बडे बडे अफसर भी इस सभा में विद्यमान थे। नन्दिविजय का इस प्रकार का बुद्धि कौसल देख कर सभी सभ्य बडे चकित हुए। बादशाह ने इन्हें भी 'खुशफहेम' की उपाधि से भूषित किया। यह जिक्र सं० १६५० का है।

इधर जगद्गुरु संवत् १६४९ के शीतकाल में पट्टन से शत्रुंजय-तीर्थ की यात्रा के लिये चले। पट्टन, राधनपुर, पालणपुर, अहमदाबाद, खंभात आदि अनेक नगरों के हजारों श्रावक श्राविकायें और सैकडों शिष्य सूरिजी के साथ हुए। सूरिजी के इस संघ की खबरें सब जगह पहुंची जिस से मालवा, मेवाड, मारवाड, दक्षिण, बंगाल, कच्छ और सिंध आदि सभी प्रदेशों के जैन-संघ तीर्थराज की यात्रा और जगद्गुरु के दर्शन के लिये शत्रुंजय की ओर रवाना हुए। फाल्गुन मास के आस पास सूरिजी शत्रुंजय पहुंचे। इस समय कोई छोटे बडे २०० संघ यहां पर एकत्र हुए जिनमें कोई ३ लाख मनुष्य थे! सूरिजी ने अपनी इस यात्रा का हाल पहले ही भानुचंद्र उपाध्याय के पास पहुंचा दिया था जिस से उन्हों ने अकबर के पास जा कर, उस समय राजकीय नियमानुसार प्रत्येक यात्री के पास से जो मस्तक-कर लिया जाता था उसे माफ करने का फरमान-पत्र लिख देने की अर्ज की। बादशाह ने तुरन्त वैसा फरमान लिख कर सूरिजी के पास भिजवा दिया जिस से वे सब लाखों यात्री विना कोई खर्च किये तीर्थाधिराज की दुर्लभ्य यात्रा कर सके। इस के पहले, इस तीर्थ की यात्रा करने वाले प्रति मनुष्य को कभी कभी तो एक एक सुवर्ण-महोर, (कर के रूप में) देने पर भी, इच्छित तया यात्रा नहीं हो सकती थी! हीरसौभाग्य के कर्ता लिखते हैं कि—

> प्राचीनजैननरपतिवारक इव निष्करे विमलशैले।
> विदधुर्विधिना यात्रां तत्र मनुष्याः परोलक्षाः॥

यहां पर सूरि महाराज ने, १ शाह तेजपाल, २ शाह रामजी, ३ जसु ठक्कर, ४ शाह कुंवरजी और ५ सेठ मूला शाह; इन ५ धनिकों के बनाये हुए विशाल और उन्नत जिनमंदिरों की महान् महोत्सव के साथ आनंददायिनी प्रतिष्ठायें कीं। समग्र जैन प्रजा इस समय आनंद और हर्ष के समुद्र में सुख पूर्वक सफर करने लगी।

'कृपारसकोश' के साथ संबंध रखने वाले इतिहास का संक्षेप में उल्लेख हो चुका। इस उल्लेख से, प्रस्तुत-पुस्तक किसने, क्यों और कब बनाया इत्यादि प्रश्नों के उत्तर भी, जो प्रत्येक पुस्तक-संपादक को देने आवश्यक हैं, दिये जा चुके। इस वृत्तांत से पाठकों को यह भी ज्ञात हो जायगा, कि अकबर जैसे महान् बादशाह के दरबार में भी जैन-आचार्य और जैन-विद्वान् अपनी साधुता और विद्वत्ता के कारण कैसा उच्च सत्कार और सन्मान प्राप्त कर सके थे। दूसरा, यह भी मालूम हो जायगा कि जैनसाधु, जिन का जीवन केवल जगत् की भलाई के निमित्त और परोपकार के लिये सर्जन हुआ है, अपने उद्देश्य को किस तरह सफल करते थे। सचमुच ही जगद्गुरु श्रीहीरविजयसूरि ने अपने पवित्र-चरित्र और दैवी जीवन से जगत् के जीवों का बहुत बडा उपकार किया। उन्हों ने वह काम कर बताया जो नितान्त अशक्य और असंभव जैसा था! जिन मनुष्यों में का सामान्य मनुष्य भी मांस खाये विना एक दिन भी चैन में नही निकाल सकता उन में के, एक दो को नहीं, परंतु लाखों मनुष्यों को और बडे बडे सत्ताधीशों को, महिनों तक मांस खाये विना रहने पडने वाला काम; तथा, जिन कत्ल-खानों में प्रतिक्षण हजारों प्राणियों के गले पर छुरी फरा करती और रक्त का प्रवाह चले करता, उन में, महिनों पर्यंत खून का एक बिन्दू तक भी नहीं गिरने वाला वृत्तांत, अशक्य और असंभव नहीं तो और क्या कहा जा सकता है?

अकबर बादशाह ने इस प्रकार महिनों तक अपने राज्य में जीव वध के न करने के जो मनाई हुक्म किये थे इस का जिक्र बदाउनी जैसे प्रसिद्ध इतिहास-लेखक ने भी किया है—

"In these days (991=1583 A. D) new orders were given. The killing of animals on certain days was forbidden, as on Sundays because this day is sacred to the Sun, during the first 18 days of the

month of Farwardin, the whole month of Aben (the month in which His Majesty was born), and several other days to please the Hindoos. This order was extended over the whole realm and capital punishment was inflicted on every one who acted against the command"

(Badaoni. P. 321.)

अर्थात्—" इन दिनों में (९९१ हीo=सन् १५८३) नये हुक्म जारी किये गये। कितनेक दिनो में, जैसे कि, रविवार के दिनो में; क्यों कि ये दिन सूर्यके हैं, इस लिये पवित्र हैं; फरवर दीन महिने के पहले १८ दिनो में, अबेन महिना कि जिस में बादशाह का जन्म हुआ है, उस के सारे दिनों में तथा हिन्दुओं को खुश करने के लिये कितनेक और दिनों में भी, जीव हिंसा के निषेध का फरमान किया गया। यह फरमान सारे राज्य में किया गया था और जो कोई इस के विरुद्ध आचरण करे उसे गर्दन मार ने का हुक्म दिया गया था। " इस में जो " हिन्दुओं को खुश करने के लिये " लिखा गया है वहां हिन्दु शब्द से जैन ही समझने चाहिए। क्यों कि जैनलोक ही इस बात का (जीव वध का) निषेध कराने में सदा प्रयत्न किया करते हैं। वे आज भी भारतीय राजा महाराजाओं के तथा दयालु युरोपीय अधिकारियों के पास इस जीवदया के विषय में हजारों अर्जियें भेजते रहते हैं और लाखों रूपये प्रति वर्ष खर्च किया करते हैं।

अकबर ने जो फरमान जगद्गुरु हीरविजयसूरि को दिये थे उनमें से कितने ही आज भी विद्यमान हैं। इन फरमानों में से दो के चित्र इस पुस्तक के साथ लगाये गये हैं। पहला चित्र उस फरमान का है जिस में बादशाह ने पर्युषण के १२ दिनों में जीववध न करने का हुक्म किया है। ऊपर पृष्ठ १७ पर जिन ६ फरमानों का उल्लेख किया गया है उन्हीं में का यह दूसरे नंबर का—

सूबे मालवे का-फरमान है। यह हाल में उज्जैन में रक्खा हुआ है। इस की लंबाई दो फुट और चौडाई १० इंच है। मोटे और मजबूत कपडे पर सुबे की शाही से लिखा हुआ है। संरक्षक की बेकदरी के कारण बहुत स्थानों पर जीर्ण-शीर्ण हो कर कुछ फट भी गया है तो भी मतलब सब अच्छी तरह पढ लिया जा सकता है। इस फरमान का अनुवाद मेजर जनरल सर जॉन मालकम (Malcolm) ने अपनी "मेमायर ऑव सेंट्रल इन्डिया (Memoirs of Central India)" नामक पुस्तक की दूसरी जिल्द के पृष्ठ १३५-६ पर दिया है। पाठकों के ज्ञानार्थ हम, साहब के कथन के साथ उक्त अनुवाद को यहां पर यथावत् उद्धृत किये देते है—

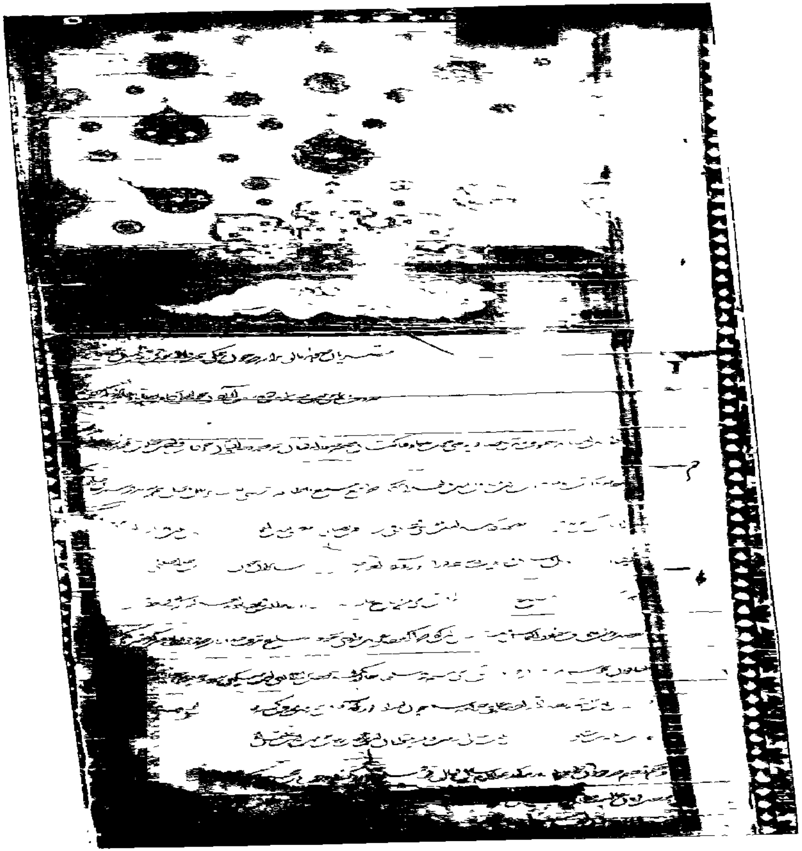
An application was made to me to prevent the slaying of animals during the Putchoossur, or twelve days which they hold sacred, and the original Firman of Akber (*carefully kept by their high priest at Oojein*) was sent for my perusal. The following is a literal translation of this curious document.

"In THE NAME OF GOD. GOD IS GREAT.

"Firman of the Emperor Julalo-deen Mahomed Akber, Shah, Padsha, Ghazee.

'Be it known to the Moottasuddies of Malva, that as the whole of our desires consist in the performance of good actions, and our virtuous intentions are constantly directed to one object, that of delighting and gaining the hearts of our subjects, &c. :

"We, on hearing mention made of persons of any religion or faith whatever who pass their lives in sanctity, employ their time in spiritual devotion, and are



अकबरबादशाह का फरमान।
(नंबर-२।)

alone intent on the contemplation of the Deity, shut our eyes on the external forms of their worship, and considering only the intention of their hearts, we feel a powerful inclination to admit them to our association, from a wish to do what may be acceptable to the Deity. On this account, having heard of the extraordinary holiness and of the severe penances performed by Hirbujisoor and his disciples, who reside in Guzerat, and are lately come from thence, we have ordered them to the presence, and they have been ennobled by having permission to kiss the abode of honour.

" After having received their dismissal and leave to proceed to their own country, they made the following request —That if the King, protector of the poor, would issue orders that during the twelve days of the month Bhodon, called Putchoossur (which are held by the Jains to be particularly holy), no cattle should be slaughtered in the cities where their tribe reside, they would thereby be exalted in the eyes of the world, the lives of a number of living animal would be spared, and the actions of his Majesty would be acceptable to God, and as the persons who made this request came from a distance, and their wishes were not at variance with the ordiances of our religion but on the contrary were similar in effect with those good works prescribed by the venerable and holy Musslman, we consented and gave orders that, during those twelve days called Putchoossur, no animal should be slaughtered.

" The present Sunudd is to endure for ever, and all are enjoined to obey it, and use their endeavours

that no one is molested in the performance of his religious ceremonies.

Dated 7th Jumad ul Sani, 992 Hejrah.'

MEMONS OF CENTRAL INDIA & MALCOLM VOL II. L C. 135 & 136 (Foot note)

अर्थ—जैनियोंने मुझसे प्रार्थना की कि पचूसर (पजूषण) के उन १२ दिनों में जिन को वे पवित्र मानते हैं जीवों की हिंसा को रोका जाय और अकबर बादशाह का दिया हुआ असली फरमान जिस को उज्जैन में रहने वाले उन के बड़े पुजारी नें यत्न से रक्खा था उन्हों ने मेरे देखने के लिये भेजा। इस अपूर्व पत्र का निम्न लिखित तर्जुमा है:—

ईश्वर के नाम से ईश्वर बड़ा है।

" महाराजाधिराज जलालुद्दीन अकबर शाह बादशाह गाजी का फरमान.

" मालवाके मुत्सद्दियों को विदित हो कि चूंकि हमारी कुल इच्छायें इसी बात के लिये हैं कि शुभाचरण किये जांय और हमारे श्रेष्ठ मनोरथ एक ही अभिप्राय अर्थात् अपनी प्रजा के मनको प्रसन्न करने और आकर्षण करने के लिये नित्य रहते हैं।

" इस कारण जब कभी हम किसी मत वा धर्मके ऐसे मनुष्यों का जिक्र सुनते हैं जो अपना जीवन पवित्रतासे व्यतीत करते हैं, अपने समय को आत्मध्यान में लगाते हैं, और जो केवल ईश्वर के चिन्तवनमें लगे रहते हैं तो हम उन की पूजा की बाह्य रीति को नहीं देखते हैं और केवल उनके चित्तके अभिप्राय को विचार के उनकी संगति करने के लिये हमें तीव्र अनुराग होता है और ऐसे कार्य करने की इच्छा होती है जो ईश्वर को पसंद हो। इस कारण हरिभज सूर्य (हीरविजयसूरि) और उन के शिष्य जो गुजरात में रहते हैं और वहां से हाल ही में यहां आये हैं उन के उग्रतप और असा-

धारण पवित्रता का वर्णन सुनकर हमने उन को हाजिर होने का हुक्म दिया है और वे आदर के स्थान को चूमने की आज्ञा पाने से सन्मानित हुये हैं। अपने देश को जाने के लिये विदा (रुखसत) होने के पीछे उन्हों ने निम्न लिखित प्रार्थना कीः—यदि बादशाह जो अनाथों का रक्षक है यह आज्ञा दे दें कि भादों मास के बारह दिनों में जो पचूसर (पजूषण) कहलाते हैं और जिन को जैनी विशेष कर के पवित्र समझते हैं कोई जीव उन नगरों में न मारा जाय जहां उन की जाति रहती है; तो इससे दुनियां के मनुष्यों में उन की प्रशंसा होगी। बहुत से जीव वध होने से बच जांयगे और सरकार का यह कार्य परमेश्वर को पसंद होगा। और चूंकि जिन मनुष्यों ने यह प्रार्थना की है वे दूर देश से आये हैं और उन की इच्छा हमारे धर्म की आज्ञाओं के प्रतिकूल नहीं है वरन उन शुभ कार्यों के अनुकूल ही है जिन का माननीय और पवित्र मुसलमान ने उपदेश किया है। इस कारण हमने उन की प्रार्थना को मान लिया और हुक्म दिया कि उन बारह दिनों में जिन को पचूसर (पजूषण) कहते हैं किसी जीवकी हिंसा न की जावे।

" यह सदा के लिये कायम रहे गी और सब को इस की आज्ञा पालन करने और इस बात का यत्न करने के लिये हुक्म दिया जाता है कि कोई मनुष्य अपने धर्म सम्बन्धी कार्यों के करने में दुःख न पावे। मिती ७ जमादुलसानी सन ९९२ हिजरी। "

इस फरमान के देने का जिक्र एक और दूसरे फरमान में भी है। हीरविजयसूरि के बाद अकबर ने खरतरगच्छ के आचार्य जिनचंद्रसूरि को भी, बिकानेर के मंत्री कर्मचंद बच्छावत की, जो कुछ समय तक अकबर के सामाजिकाध्यक्ष थे, प्रेरणा से अपने पास बुलाये थे। उन का दिल भी राजी रखने के लिये बादशाह ने मुलतान के सूबे में, प्रतिवर्ष, आषाढ महिने के शुक्ल पक्ष के अंतिम ८ दिनों में जीववध के न करने का फरमान लिख दिया था+। यह

+ इस विषय का विशेष वृत्तान्त देखना हो तो, देखो, ' कर्मचंद्रप्रबंध. ' (जो छप रहा है।)

फरमान प्रयाग की सुप्रसिद्ध हिन्दी मासिक-पत्रिका 'सरस्वती' के १९१२ के जून के अंक में (भाग १३, संख्या ६ में) प्रकाशित हुआ है जिसे हम यहां पर तद्वत् प्रकट किये देते हैं। मूल फरमान फारसी में है और ऊपर शाही मुहर लगी हुई है। फारसी का अक्षरान्तर इस प्रकार है:—

" फ़र्मान जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर बादशाह गाजी—

हुक्काम किराम व जागीरदारान व करोरियान व सायर मुत्सद्दियान मुहिम्मात सूबे मुलतान बिदानंद।

" कि चूं हमगी तवज्जोह खातिर खैरंदेश दर आसूदगी जमहूर अनाम बल काफ़्फ़ए जॉदार मसरूफ़ व मातूफ़स्त कि तबक़ात आलम दरमहाद अमन बूदा बफ़राग़ बाल बइबादत हज़रत एज़िद मुतआल इस्तग़ाल नुमायंद। व क़ब्ले अज़ीं मुरताज़ खैरअंदेश जैचंदसूर खरतर गच्छ कि बफ़ैज़े मुलाज़िमत हज़रते माशरफ़ इख़तिसास याफ़ता हक़ीक़त व ख़ुदा तलबी ओ ब ज़हूर पैवस्ता बूद। ओरा मशग़ूल मराहिम शाहंशाही फ़रमूदैम्। मुशारन् इले हैं इल्तिमास नमूद कि पेश अजीं हीरविजयसूरि सागर शरफ़ मुलाज़िमत् दरियाफ्ता बूद। दर हरसाल दोवाज़दह रोज़ इस्तदुवा नमूदा बूद कि दरां अय्याम दर मुमालिके महरूसा तसलीख़ जॉदारे न शवद। व अहदे पैरामून मुर्ग़ व माही व अमसाले आँ न गरदद। व अज़् रूय मेहरबानी व जाँ परवरी मुलतमसे ऊदरजै क़बूल याफ्त। अकनू उम्मेदवारम् कि यक हफ्ते दीगर बुवागोय् मिस्ले आँ हुक्मे आली शरफ़ सुदूर यावद्। बिनावर उमूम राफ़त हुक्म फ़रमूदैम् कि अज़ तारीखे नौमी ता पूरनमासी अज़ शुक्ल पछ असाढ़ दर हर साल तसलीख जॉदारे न शवद। व अहदे दर मक़ाम आज़ार जॉदार .... मौरे न गरदद। व अस्ल ख़ुद आँनस्त कि चूँ हज़रते बे चूँ अज़ बराए आदमी चंदी न्यामतहाय गूनागूं मुहय्या करदाअस्त। दर् हेच वक़्त दर आज़ार जानवर न शवद्। व शिकमे ख़ुदरा गोर हैवानात न साजद। लेकिन बजेहत् बाज़े मसालह्

दानायान पेश तजवीज़ नमूदा अंद। दरींविला आचार्य्य जिनसिंह-सूरि उर्फ़ मानसिंह ब अरज़ अशरफ़ अक़दस रसानीद कि फ़रमाने कि क़ब्ल अज़ीं बशरह सदर अज़ सुदूर यापता बूद गुम शुदा। बिनाबरां मुताबिक़ मज़मून हुमा फ़रमान मुजद्दद फ़रमान मरहमत फ़रमूदैम। मे बायद कि हस्बुल मस्तूर अमल नमूदा ब तक़दीम रसानंद। व अज़ फ़रमूदह तख़ल्लुफ़ व इनहिराफ़ नवरज़ंद। दरीं बाब निहायत एत हमाम व क़दग़न अज़ीम लाज़िम दानिस्ता तग़इयुर व तबद्दुल बक़वायद आँ राह न दिहंद। तहर्रीरन् फ़ीरोज़ रोज़ सी व यकुम माह खुरदाद इलाही सन् ४९।

(१) "ब रिसालए मुक़र्बुल हज़रत स्सुलतानी दौलत खाँ दर चौकी (उमेद उमरा)

(२) ज़ुबूदतुल आयान राय मनोहर दर नौबत वाक़या नवीसी ख़्वाजा लालचंद"।

जोधपुर निवासी मुंशी देवीप्रसादजीने इस का अनुवाद हिन्दी में इस तरह किया है:—

फ़रमान अकबर बादशाह गाज़ी का।

"सूबे मुलतान के बड़े बड़े हाकिम, जागीरदार, करोड़ी और सब मुत्सद्दी (कर्मचारी) जान लें कि हमारी यही मानसिक इच्छा है कि सारे मनुष्यों और जीव-जन्तुओ को सुख मिले, जिससे सब लोग अमन चैन मे रह कर परमात्मा की आराधना में लगे रहे। इससे पहले शुभचिन्तक तपस्वी जयचन्द्र (जिनचंद्र) सूरि खरतर (गच्छ) हमारी सेवा मे रहता था। जब उस की भगवद्-भक्ति प्रकट हुई तब हमने उस को अपनी बड़ी बादशाही की मेहरबानियों में मिला लिया। उसने प्रार्थना की कि इस से पहले हीरविजयसूरि ने सेवा में उपस्थित होने का गौरव प्राप्त किया था और हरसाल १२ दिन माँगे थे, जिन मे बादशाही मुल्कों में कोई जीव मारा न जावे और कोई आदमी किसी पक्षी, मछली और उन जैसे जीवों को कष्ट न दे। उस की प्रार्थना स्वीकार हो गई थी। अब मैं

भी आशा करता हूं कि एक सप्ताह का और वैसा ही हुक्म इस शुभचिन्तक के वास्ते हो जाय। इस लिये हमने अपनी आम दया से हुक्म फ़रमा दिया कि आषाढ़ शुक्लपक्ष की नवमी से पूर्णमासी तक साल में कोई जीव मारा न जाय और न कोई आदमी किसी जानवर को सतावे। असल बात तो यह है कि जब परमेश्वर ने आदमी के वास्ते भाँति भाँति के पदार्थ उपजाये हैं तब वह कभी किसी जानवर को दुख न दे और अपने पेट को पशुओं का मरघट न बनावे। परन्तु कुछ हेतुओं से अगले बुद्धिमानों ने वैसी तजवीज़ की है। इन दिनों आचार्य जिनसिंह उर्फ मानसिंह ने अर्ज़ कराई कि पहले जो ऊपर लिखे अनुसार हुक्म हुआ था वह खो गया है। इस लिए हमने उस फ़रमान के अनुसार नया फ़रमान इनायत किया है। चाहिए कि जैसा लिख दिया गया है वैसा ही इस आज्ञा का पालन किया जाय। इस विषय में बहुत बड़ी कोशिश और ताकीद समझ कर इस के नियमों में उलट फेर न होने दें। ता. ३१ खुरदाद इलाही, सन ४९।

हज़रत बादशाह के पास रहने वाले दौलतखाँ के हुक्म पहुंचाने से, उमदा अमीर और सहकारी राय मनोहर की चौकी और ख्वाजा लालचंद के वाकिया (समाचार) लिखने की बारी में लिखा गया"।

हीरविजयसूरि को इनायत किये गये १२ दिनों का स्वीकार अकबर के कितने ही उत्तराधिकारियों ने भी किया था ऐसा बहुत से ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा जाना जाता है परंतु उन के यहां पर देने की जगह नहीं। राजपूताना और मालवे के देशी राजा महाराजाओं ने भी अकबर का अनुकरण किया था और अपने राज्य में पर्युषणों के दिनों में जीवहिंसा की निषेधात्मक उद्घोषणा प्रतिवर्ष कराते थे। उदाहरण के तौर पर मालवे की धार-रियासत को ले लीजिए जहां पर आज भी इस नियम का अच्छी तरह पालन किया जाता है।

दूसरा फोटू उस फरमान का है जिस में शत्रुंजयादि तीर्थों के, हीरविजयसूरि के स्वाधीन करने का जिक्र है। इस बात का उल्लेख ऊपर पृष्ठ २० पर किया गया है। यह फरमान अहमदाबाद में, आनन्दजी कल्याणजी नाम की जैन-तीर्थ-संरक्षक संस्था के स्वाधीन में है। यह २ फुट लंबा और १ फुट ५ इंच चौडा है। यह भी सौवर्णाक्षरों में सफेद वस्त्र पर लिखा हुआ है। ऊपर बांई तरफ शाही मुहर लगी हुई है (जिस का भी जुदा फोटू, 'एन्लार्ज' करा कर, पाठकों को देखने लिये लगाया गया है) इस फरमान का अंग्रेजी अनुवाद, राजकोट (काठियावाड) के राजकुमार कॉलेज के मुंशी महम्मद अब्दुल्लह ने किया है जो नीचे दिया जाता है।

GOD ALMIGHTY.

Firman of Jelalouddeen Mahomed Akbar Badsha the Victorious

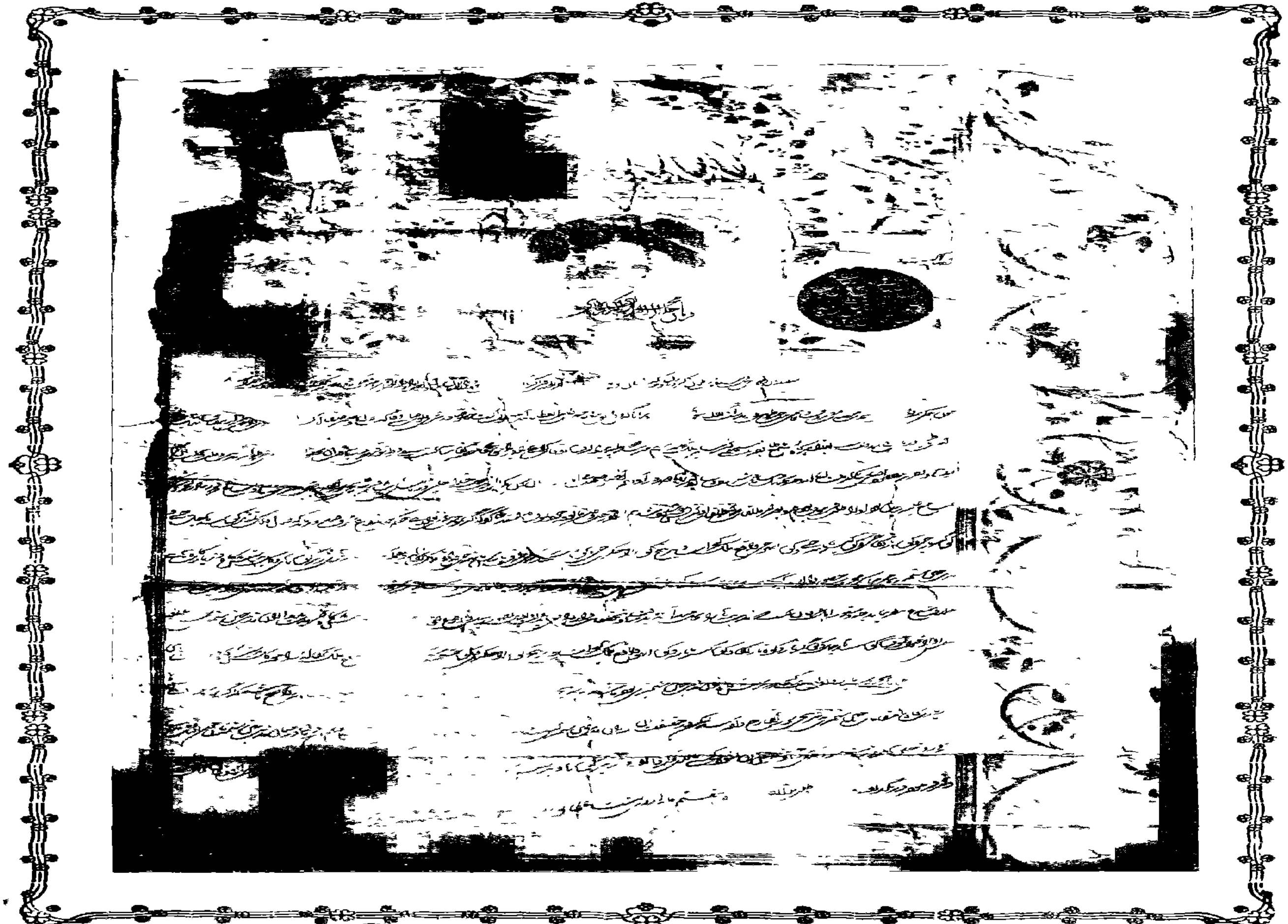
Glory of religion and World, Akber Badsha the son of Humayoon Badsha, the son of Babar Badsha, the son of Shaik Omer Mirza, the son of Sultan Aboo Syud, the son of Sultan Mahmed Mirza, the son of Meerun Shah, the son of Tymoor the Lord of happy conjunction, (Jupiter and Venus)

Be it known to the officers of the present and future times, and to the Governors Tax Collectors, and the Jagirdars of the Soobas of Malwa and Shah Jehanabad, the Metropolis of Lahore, the seat of royalty of mooltan the place of peace and tranquility of Ahmedabad and of Ajmere, the place of goodness and of Meerut, Gujrat and the Sooba of Bengal and of other territories under our Government,

Whereas the whole of our noble thought and at-

tention is directed to attend to the wishes, and seek the pleasures of subjects, and the sole aim of our mind which wishes well of all is to secure love and affection of the people and the ryots who are the noblest trust (committed to our charge) of the Lord the great bestower of bounties, and where as our mind is especially occupied in searching for the men of pure hearts and those that are devotional, therefore whenever tidings of a person passing his valuable time solely in the remembrance of God comes to our ear from any quarter of the territories subject to our dominion, we become extremely desirous of ascertaining his virtues and intrinsic merits, without any regard to his religioun, faith or creed and by laudable means and honorable manner we bring him from afar, admit him in to our presence and enjoy the pleasure of his company.

As many a time the accounts of the Godliness and austere devotion of Heer bijoy Soor, an Acharj (preceptor) of the Jain Sitambury religioun and those of his disciples and followers who live at the ports of Gujarat, had come to our noble ear, we sent for and called him. After the interview which made us very glad, was over he intended to take leave in order to return to his original and native country. He therefore requested that by way of extreme kindness and favour a royal mandate which is obeyed by all the world, be issued to the effect that the heaven reaching mountains of Sidhachalji, Girnarji, Tarungaji, Kesarianathji and Aboo ji, situated in the country of



अकबर बादशाह का फरमान ।
(नंबर—२ १)

Gujarat, and all the five mountains of Rajgirıji, and the mountain of Samed shikherjı allas Paıashna-thajı, situated ın the Countıy of Bengal, and all the cotees and all temples below the mountaıns and all the places of worship and Pılgrimage of the Jaıns Sıtumbaıy Relıgıoun thıoughout our Empire whereveı they may be, be in his possession, and that no one can slaughter an animal on those mountains ın the temples or below or above them. As he had come from a long dıstance and ın truth his request was just and proper, and appeared not to be Repugnath to the Mahomedan Law ıt being the rule of learned to respect and pre-serve all relıgıons and as ıt became evident upon ın quıry and after through ınvestigatıon that all those mountaıns and places of woıship really belong to the Jaın Setambarı relıgıon from a long space of time; therefore we comply with his request, and grant to and bestow upon Heer bıjoy Scor, Acharj of the Jaın Setambur, relıgıoun, the mountain of Sıdhachal, the mountaın of Gırnar, the mountaın of Tarunga, the mountaın of Keshrıanath, and the mountaın of Aboo lyıng ın the country of Gujarat, and the five moun-taın of Samed shıkhur, alias Pareshnath situated ın the countıy of Bengal and all the places of woıship and pılgrımage below the mountains and whereever they may be any places of worship appertaınıng to the Jaın Setambary relıgıoun throughout our empıre. It ıs proper that he should perform his devotıon with his ease of mind.

It may be obvious that although these mountains and places of worship and pilgrimage the places of the Jains Setambari religion have been given to Heer bijoy Soor, yet in reality they belong to the Jain Setambari religion.

Let the orders of this everlasting firman shine like the Sun and the Moon amongst the followers of the Jain Setambari religion so long as the Sun, the illuminator of the Universe, continues to impart light and brightness to the day, and the Moon remains to give splendour and beauty to the night. Let no one offer any opposition or raise any objection to the same, and let nobody slaughter an animal on, below or about the mountains, and in the places of worship and pilgrimage. Let the orders of this Firman, obeyed by all the world, be acted upon and carried out, and let none depart from the same, or demand a new Sanad Dated, the 7th of the month Urdi Bihisht, corresponding with the month Rabeool-Awal of the thirty seventh year of the auspicious reign"

Rajkumar College,

Rajkotee,

11th November, 1875

Tranlated By

MR MAHOMED ABDOOLLAH MOONSHI

of the Rajkumar College

हिन्दी-भावार्थः—

सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ।

शूरवीर तैमूरशाह का बेटा मीरनशाह, उस का बेटा सुलतान महम्मद मीरजा, उस का बेटा सुलतान अबू सैयद, उस का बेटा शेख उमर मीरजा, उस का बेटा बाबर बादशाह, उस का बेटा हुमायुन बादशाह, उस का बेटा अकबर बादशाह, जो दीन और दुनिया का तेज है ।

जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर बादशाह गाजी का फरमान ।

सूबे मालवा, शाहजहानाबाद, लाहोर, मुलतान, अहमदाबाद, अजमेर, मेरट, गुजरात, बंगाल तथा मेरे ताबे के और सभी मुल्कों में, अब जो मौजूद है तथा पिछे से जो नियत किये जाय उन सभी सूबेदारों, करोडियों और जागीरदारों को सूचित किया जाता है कि:—

हमारा कुल इरादा अपनी प्रजा को खुश करने का और उस के दिल को राजी रखने का है। तथा हमारा अंतःकरण पवित्र-हृदय वाले और ईश्वरभक्त सुजनों की शोध करने में निरंतर लगा रहता है। इस लिये, अपने राज्य में रहे हुए ऐसे साधुपुरुष का जब कभी हम नाम सुनते है तो तुरन्त उन्हें बडे आदर के साथ अपने पास बुलवाते है और उन की सत्संगति कर आनंद प्राप्त करते है।

हमने, गुजरात में रहने वाले जैनश्वेताम्बर संप्रदाय के आचार्य हीरविजयसूरि और उन के शिष्यों के विषय में बहुत वक्त सुना था कि वे बडे पवित्रमनवाले साधुपुरुष है । इस लिये हमने उन को अपने दरबार में आने का आमंत्रण किया । उन के दर्शन से हमें बहुत खुशी हुई। जब वे वापस अपने देश को जाने लगे तब यह अर्ज गुजारी कि—" गरीब पर्वरी की राह से एक ऐसा आम हुक्म हो जाना चाहिए, कि सिद्धाचलजी, गिरनारजी, तारंगाजी, केशरीयानाथजी और आबूजी के तीर्थ, जो गुजरात में हैं, तथा राजगृ-

हिजी के पांच पहाड और सम्मेतशिखरजी उर्फ पार्श्वनाथ पहाड जो बंगाल में है; उन सभी पहाडों के नीचे, सभी मंदिरों की कोठियों के पास तथा और सभी भक्ति करने की जगहों, जो जैनश्वेताम्बर धर्म की हैं, उन की चारों ओर, कोई भी आदमी किसी जानवर को न मारे।" ये (महात्मा) दूर देश से आये हैं। इन की अर्ज यथार्थ है। मुसलमान धर्म से भी इन की याचना विरुद्ध नहीं है। क्यों कि महान् पुरुषों का यह नियम होता है कि वे किसी धर्म में अपना दखल नहीं करते। इस लिये हमारी समझ में यह अर्जी दुरस्त मालूम दी। तहकीकात करने से भी मालूम हुआ कि ये सभी स्थान बहुत अर्से से जैनश्वेताम्बर धर्म ही के हैं। अतएव इन की यह अर्ज मंजूर की गई है। और " सिद्धाचल, गिरनार, तारंगा, केशरीया और आबू के पहाड जो गुजरात में हैं, तथा राजगृहि के पांच पहाड और सम्मेतशिखर ऊर्फ पार्श्वनाथ पहाड जो बंगाल में हैं, तथा और भी जैनश्वेताम्बर संप्रदाय के धर्मस्थान जो हमारे ताबे के मुल्कों में हैं वे सभी जैनश्वेताम्बर संप्रदाय के आचार्य हीरविजयसूरि के स्वाधीन किये जाते हैं। जिस से शांतिपूर्वक ये इन पवित्र स्थानों में अपनी ईश्वरभक्ति किया करें।"

यद्यपि इस समय ये स्थान हीरविजयसूरि को दिये जाते हैं परंतु वास्तव में है ये सब जैनश्वेताम्बर धर्मवालों ही के, और इन्हीं की मालिकी के हैं।

जब तक सूर्य से दिन और चाँद से रात रोशन रहे तब तक यह शाश्वत फरमान जैनश्वेताम्बर धर्मवालों में प्रकाशित रहे। कोई भी मनुष्य इस फरमान में दखल न करे। इन पर्वतों की जगह-नीचे, ऊपर, आसपास, सभी यात्रा के स्थानों में और पूजा करने की जगहों में कोई, किसी प्रकार की जीवहिंसा न करे। इस हुकम पर गौर कर अमल करे। कोई भी इस से उलटा बर्ताव न करे तथा दूसरी नई सनद न मांगे। लिखा तारिख ७ मी, माहे ऊर्दी बेहेस्त मुताबिक रवीऊल अवल सन ३७ जुलसी।



अकबर बादशाह की मुहर,
जो नंबर दूसरे वाले फरमान में ऊपर बाईं
तरफ लगी हुई है।

बादशाही फरमानों में ऊपर के भाग पर, बहुत करके वैसे ही चित्र चित्रित किये जाते हैं जैसे प्रथम नंबर वाले फरमान में दिखाई देते हैं। परंतु इस फरमान में और ही प्रकार के दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं। मुख्य कर मध्य का जो चित्र है वह एक देव-मंदिर के आकार का सा है। शायद यह इस लिये बनाया गया हो कि, यह फरमान खास कर देवमंदिरों की ही रक्षा के निमित्त दिया गया है इस लिये उस अर्थका सूचक यह चित्र ऊपर चित्रित कर दिया गया हो।

इन दोनों फरमानों के छाया-चित्र हमें शांतमूर्ति श्रीमान् मुनि-हंसविजयजी महाराज की कृपा से प्राप्त हुए है। एतदर्थ आप को अनेक धन्यवाद। सुना जाता है कि ऐसे और भी कितने ही बादशाही फरमान तपगच्छ के मुख्य गद्दीधर आचार्य के पास मौजूद हैं परंतु संरक्षकों में सामयिक शिक्षा का अभाव होने से वे बेचारे अभी तक, जीर्ण-संदूकों के अंदर, शोचनीय हालत में, कैद पडे हुए हैं। कोई साहित्य-रसिक उन्हें सुंदर स्वरूप में सज कर, जगत् के प्रकाशित प्रदेश में स्थापन करें तो जैनधर्म की विभुता में और भी अधिक वृद्धि होगी। अस्तु।

जगद्गुरु श्रीहीरविजयसूरि के इन पुण्यावदातों का उल्लेख सैंकडों ही शिला-लेखों और सैंकडों ही ग्रंथों में बडी विशद रीति से किया गया है (-देखो, मेरी संपादित, 'प्राचीनजैनलेखसंग्रह' आदि पुस्तकें।) जिन में से संक्षेप में और केवल प्रकृत पुस्तकोपयोगी हाल हमने यहां पर दिया है। जिन जिज्ञासुओं को इन महात्माका संपूर्ण वृत्तांत जानने की जिज्ञासा हो वे, जगद्गुरु काव्य, हीरसौभाग्य काव्य, विजयप्रशस्ति काव्य, विजयदेवमहात्म्य और पट्टावली आदि ग्रंथ देखें। ये सब ग्रंथ जगद्गुरु के जीवन काल में या थोडे ही वर्षों बाद रचे गये हैं। इस लिये इन की प्रामाणिकता में कुछ भी संदेह नहीं है। अकबर बादशाह के विश्वासु और प्रिय प्रधान शेख अबुल-फजल ने भी अपनी आईन-ए-अकबरी नामक प्रसिद्ध पुस्तक में लिखा है कि-बादशाह के दरबार के जितने विद्वान् थे वे

सब ५ वर्गों में विभक्त किये गये थे। उन में हीरविजयसूरि प्रथम वर्ग के विद्वान थे। (Ain-i-Akbari, vol. 1, Pages 531 & 547.) इस से भी ज्ञात होता है कि सूरिजी का सन्मान अकबर के दरबार में बहुत अच्छा हुआ था।

इस कृपारस कोश की केवल एक ही प्राचीन प्रति प्राप्त हुई है और उसी के आधार पर यह मुद्रित किया गया है। प्रति कुछ विशेष अशुद्ध होने से कहीं कहीं अशुद्धता और एक दो जगह अपूर्णता भी रह गई है। मुनिमहाराज श्रीवल्लभविजयजी के पास से एक दूसरी भी प्रति उपलब्ध हुई परंतु वह प्रथम ही की नकल मात्र थी। ग्रंथकर्ता के विद्वान् शिष्य रत्नचंद्र उपाध्याय ने इस कृपारस-कोश पर संस्कृत टीका बनाई है परंतु वह अभी तक कहीं उपलब्ध नहीं हुई। इस पुस्तक के अंत में, हिन्दी में, संक्षिप्त-भावार्थ भी लगा दिया गया है जिस से संस्कृत नहीं जानने वाले भी इस ग्रंथ का तात्पर्य जान सकेंगे।

अंत में एक शुभाशा का उल्लेख कर इस वक्तव्य को समाप्त किया जाता है। विक्रम की सतरहवीं शताब्दी भारत के इतिहास में सदा प्रकाशित रहेगी। जैनियों में हीरविजयसूरि, महाराष्ट्रियों में संत तुकाराम और उत्तर के हिन्दियों में भक्त तुलसीदास जैसे धर्मवीर तथा क्षत्रियमुकुटमणि महाराणा प्रतापसिंह और मुगल सम्राट् बादशाह अकबर जैसे कर्मवीर पुरुष, अपने पवित्र धर्म और कर्म से इसी सदी के सौभाग्य को समुन्नत कर गये है। जगद्विजयिनी भारतजननी से सानुनय-विनय है कि वह एक बार फिर ऐसे तेजोमय आत्माओं को अवतार दे जिस से दिन प्रतिदिन निस्तेज होते जाते हुए हम भारतियों के धर्म और कर्म पुनः प्रज्ज्वलित हों और ऐहिक तथा पारलौकिक कर्तव्यों में पूर्ववत् फिर हम संसार-समुद्र के मार्गदर्शक दिव्यदीप बनें। शमस्तु।

जैन-उपाश्रय,
बडौदा।

मुनि जिनविजय।

अर्हम्

श्रीमदकबरबादशाहप्रतिबोधकृते

महोपाध्यायश्रीशान्तिचन्द्रकृतः

कृपारसकोशः ।

ॐ

येनादर्शि जगत्करामलकवज्ज्ञानात्मना चक्षुषा
येन ज्ञानमयेन विश्वमखिलं व्याप्तं व्यतीतद्विषा ।
येनानुग्रहबुद्धिना भगवता सर्वो जनश्चिन्तितो
धौरेयं ह्युपकारधूर्धृतिकृते ध्यायेम तं स्वामिनम् ॥१॥

क्षोभो न लोभो न न कामकेलि-
र्न दोषपोषौ न च रोषतोषौ ।
अमी स्फुटा यस्य भवन्ति भावा
उपास्महे तं परमं पुमांसम् ॥ २ ॥

निर्द्वन्देन शुभेन येन विभुना विश्वं सनाथीकृतं
अस्याम्मोदितमप्यलक्ष्यचरितं दुर्लक्ष्यमर्वाग्दशाम् ।
वाचोयुक्तिभिरप्यवाच्यवचनो यो यो न योगीन्दुभि-
र्गम्यो रम्यगुणाय नित्यपरमानन्दाय तस्मै नमः ॥३॥

सांसारीभिरविद्याभिराक्रान्तो यो न जातुचित् ।
रात्नाकरीभिरूर्मीभिरन्तरीप इव स्फुटः ॥ ४ ॥
संसारतमसः पारे पारातीतस्य यो विभुः ।
अपारस्यापि पयसः पारे पाथोरुहं न किम् ॥ ५ ॥
अप्यप्रिये प्रियगिरः प्रियकारकस्य
धाता ससर्ज रसनां च मनश्च यस्य ।
द्रव्येण गुल्यमृदुना विगलन्मलेन
तस्मै नमो हृदयरञ्जनसज्जनाय ॥ ६ ॥
व्यक्तीभवेत्सुजनलोकगुणो स्फुटोऽपि
यस्यातिभीमविपरीतचरित्रदृष्टया ।
पथ्या फलान्मधुरिमेव गुणोज्ज्वलस्य
सत्कार्य एव स खलः सुजनोपकारी ॥ ७ ॥
देशः पेशललक्ष्मीकः क्लेशलेशविवर्जितः ।
श्रीखुरासाण इत्याख्यः प्रख्यातो विषयान्तरे ॥ ८ ॥
परिपाकगलद्वृन्तैः खर्जूरीफलसञ्चयैः ।
सन्ति दुस्सञ्चरा यत्र नगरोपान्तभूमयः ॥ ९ ॥
दुर्बलश्रुतयस्तुङ्गस्कन्धा रोषान्धचेतसः ।
वक्रानना वाजिनः स्युर्न राजानः कदाचन ॥ १० ॥
उच्चैःश्रवसजातीया अनुच्चैःश्रवसो हयाः ।
साधीयःसाधनं यत्र राज्ञामेकं जयश्रिये ॥ ११ ॥
अक्षोडमुख्यखाद्यानि धान्यानीव पदे पदे ।
अटन्ति यत्र किं तत्र वर्णयामो महोर्वराम् ॥ १२ ॥
अनाविलं वयाविलमस्ति नाम्ना

पुरं पुराणां धुरि वर्णनीयम् ।
उच्चैस्तनी यत्र चकास्ति भित्ति-
वप्रेऽवरोधे वनिताततिश्च ॥ १३ ॥
अदृष्टसूर्याः सदने यवन्यः
सदापि संसेवितसज्जवन्यः ।
सीमावनीषु प्रघनाश्च वन्य-
श्छायासमाच्छादितभूर्यवन्यः ॥ १४ ॥
सुसेविताः स्वामिजना इव ध्रुवं
फलन्ति काले किल यत्र पादपाः ।
काले घनो वर्षति चाचिरप्रभा
काले च काले घनगर्जितान्यपि ॥ १५ ॥
यदीयशास्तारमशीतशासनं
संलक्ष्य लक्ष्मीरकुतोभया सती ।
समग्रदिग्मण्डलतः समीयुषी
चकार यत्र स्थिरमेकमाश्रयम् ॥ १६ ॥
स्नेहक्षयो यत्र विभातदीपे
तथोदयोऽस्तं सहितोऽभ्रदीपे ।
सापच्च संपद्रजनीप्रदीपे
जने न दृष्टः प्रहतप्रदीपे ॥ १७ ॥
अस्ति त्रस्तसमस्तारिस्तत्र शास्ता प्रशस्तहृत् ।
अकर्बुरं यशो बिभ्रद्बर्बरो मुद्गलाधिपः ॥ १८ ॥
दग्धवैरिदलिकं किल तेजो -
राशिरस्य वडवानल एव ।

दीपनाय रिपुभूपपुरन्ध्री-
लोचनाश्रुनिवहोऽजनि यस्य ॥ १९ ॥
अधिज्यके धन्वनि तस्य विद्विषा-
मधःकृता भ्रूकुटिरुत्कटापि हि ।
तस्मिन् शरौघं लघु संदधत्यहो
तुत्रोट तेषां रणगर्वग्रन्थिका ॥ २० ॥
नामतस्समजनिष्ट हमाऊ
तत्सुतो नरमणिः स च यस्मिन् ।
रत्नकुक्षिविधृते शुशुभेऽम्बा
शुक्तिकेव धृतमौक्तिकरत्ना ॥ २१ ॥
स क्रमेण ववृधे सुतरत्नं
तेजसा च वयसा च गुणैश्च ।
ग्रीष्मभानुरिव भीष्मगुणाढ्यो
दुस्सहोऽसहनसंहतिकानाम् ॥ २२ ॥
अन्योऽन्यमात्सर्यवशाद्विवैताः
संचक्रमुस्तत्र कलाः समग्राः ।
जायेत लभ्ये सुभगे हि कान्ते
मृगीदृशामाशयबन्धसाम्यम् ॥ २३ ॥
अदृष्टलक्ष्यव्यधतत्परं स्मरं
कलागुरूकृत्य धनुःकलाधरः ।
धनुष्मतां पङ्क्तिषु मुख्यतां गतः
स शब्दवेधी न कथं कुमारराट् ॥ २४ ॥
तस्मिन् राज्यं निहितवान् हितवान् भूतलेऽखिले ।

योग्योऽसाविति जनको जानकीजानिसन्निभे ॥२५॥
चोलीबेगम इत्याख्या भाजनं प्रेमसम्पदाम् ।
राज्ञी राज्ञोऽभवत्तस्य लक्ष्मीर्लक्ष्मीपतेरिव ॥ २६ ॥
सत्यप्यन्तःपुरे प्राज्ये साभूत्प्रेम्णेऽस्य भूरिणे ।
सतीषु सर्वतारासु रोहिणीव हिमद्युतेः ॥ २७ ॥
अस्या असूर्यंपश्याया अपि चित्रकरो हृदि ।
पतिव्रताधर्मजुषो वर्ण्यते पद्मिनीगुणः ॥ २८ ॥
जिग्ये यद्वदनश्रिया कुमुदिनीप्राणप्रियश्चक्षुषोः
संपत्त्या हरिणश्च विश्वनयनप्रेमोपदा प्रह्वया ।
स्थित्वैकत्र तयोर्जयाय तनुतस्तन्मन्त्रमेतावुभौ
नो चेदम्बरचारिभूमिचरयोरेकत्र वासः कुतः ॥२९॥
माणिक्यमुक्तामणिहेमजात-
विभूषणश्रेणिमसौ शरीरे ।
बिभर्त्ति यां प्रत्युतकायकान्ति-
व्रातैरमुष्याः परिदीप्यतेऽस्याः ॥ ३० ॥
भुञ्जानयोः सह तयोः क्षितिपाललक्ष्मीं
कालः कियानतिजगाम निकामरामः ।
नैशक्षणो गगनमण्डलभोगभाजोः
संपूर्णचन्द्रवरचन्द्रिकयोरिवाशु ॥ ३१ ॥
सर्वातिशायिमहिमा सवितुः सगर्भे
गर्भं बभार मणिभूरिव राजरत्नम् ।
सुस्वप्नसूचिततमाभ्युदयप्रकर्षं
हर्षं सृजन्तममलस्य कुलस्य राज्ञी ॥ ३२ ॥

स्वं पश्यति स्म कमलाविधृतातपत्र-
मुत्सङ्गसङ्गतमधान्मृगराजबालम् ।
बिम्बं पपौ च परिपूर्णमनुष्णरश्मेः
पुत्रावतारसमये क्षितिपालपत्नी ॥ ३३ ॥
नन्दनोर्व्यामिवाङ्कुरः कल्पद्रोः कामितप्रदः ।
गर्भः प्रववृधेऽमुष्याः सुमुख्या मुख्यभूपतेः ॥ ३४ ॥
गर्भानुभावात्सुभगः शुभाया
यो दोहदोऽस्याः प्रकटीबभूव ।
अपूरयद्भूपतिचक्रवर्त्ती
क्षणेन तं पुण्यवदग्रवर्त्ती ॥ ३५ ॥
मातर्नापितकान्तया कृतपुरस्कारं शुचिं दर्पणं
मुक्त्वा कामयते स्म तेजितमसिं दुर्दर्शमुत्पिञ्जलैः ।
रूपालोकनहेतवे ग्रहणजं क्लेशं च चन्द्रार्कयोः
नापश्यत्परदुःखकातरमना गर्भानुभावोदयात् ॥३६॥
अङ्के केसरिणं विशङ्कमनसा साऽखेलयत्सुन्दरी
मत्तं सिन्धुरमारुरोह विसृणिश्रेटीनिषिद्धापि च ।
चित्रन्यस्तममंस्त चित्रकमपि प्रायो हयं शूकलं
साध्वी साधुमिवातिवाहितवती तैस्तैर्विशिष्टैर्गतैः ॥३७॥
कस्तुरी मृगमृत्युमात्रसुलभा न ह्यङ्गरागे प्रिया
मुक्ताः शुक्तिविभङ्गजा नहि मनस्तस्या विभूषाविधौ ।
कौशेयं किल नैच्छदच्छहृदया नेपथ्यमातन्वती
माता कुक्षिगते सुते बहुकृपासिन्धौ सबन्धौ हरेः ॥३८॥
दानाय मेरुं चकमे महामना-

स्तथा च ताराचलरोहणाचलौ ।
सपादभारप्रमितार्जुनप्रदं
पुनः पुनः कर्णनृपं निनिन्द सा ॥ ३९ ॥
नोज्झाञ्चकार दाक्षिण्यमपि विप्रियकारिणि ।
नासभ्यमब्रवीत्सभ्या दास्याः परुषभाषणे ॥ ४० ॥
दिनेषु पूर्णेष्वथ हृष्टबन्धु-
ष्वाकारसन्दोहमुदारमूर्तिम् ।
बिम्बं हिमांशोरिव पूर्णमासी
प्रासूत सा सूनुमनूनभाग्यम् ॥ ४१ ॥
भूषोत्कर्षा अकार्षुः पणहरिणदृशस्ताण्डवाडम्बराणि
व्यक्तानन्दा अमन्दं कुलकमलदृशः प्रोचिरे मङ्गलानि ।
साशीर्वादं प्रणेदुः पटुतरपटहश्रत्वरे चत्वरेऽसौ
चक्रे भूचक्रशक्रः सुमहमिति तनूजन्मनो जन्मनोऽस्य॥४२॥
शुभेऽहनि स्थामवतां ग्रहाणां
बलैर्बलिष्ठः प्रकटप्रभावः ।
मातापितृभ्यामयमीरितोऽभूत्
श्रीसाहिजातोऽकबरेति नाम्ना ॥ ४३ ॥
अः सर्वनाथः क इतीव चात्मा
वरः प्रधानः स इवास्ति तेषु ।
तादृक्प्रभुत्वादिभिरित्युदर्थां
विज्ञो जगादाकबरेति संज्ञाम् ॥ ४४ ॥
पित्रोः प्रमोदेन समेधमानः
प्रभूतभूपालकुलप्रसूतैः ।

पोतैस्स रेमे रमणीयमूर्त्ति-
र्ग्रहैर्द्वितीयेन्दुरिवानुयातः ॥ ४५ ॥
कांश्चित्कुमारांस्तुरगान् प्रकुर्वन्
कांश्चिद्रथान् कांश्चिदिभान् प्रगल्भः ।
कांश्चित्प्रजाः कांश्चिदमात्यमुख्यां-
श्चिक्रीड स क्रीडनसूचितश्रीः ॥ ४६ ॥
प्रशालचूडामणितां दधानः
क्रमादसौ भूमिभुजस्तनूजः ।
पक्षेऽवलक्षे कृशतामिवेन्दु-
र्मुमोच बालत्वमबाललीलः ॥ ४७ ॥
कलयामास सकलाः सकलाः स कलागुरुः ।
यथालोककलोकानामादर्शः प्रतिमाततीः ॥ ४८ ॥
हयाशये कौशलमस्य पेशलं
किं वर्णयामो यदनेन चालितः ।
मन्दोऽपि वाजी गतितोऽनिलायते
परेरितो यः खलु मृन्मयायते ॥ ४९ ॥
उद्दामद्विरदद्विदन्तमुशली तस्यारुरुक्षोः सतो
निःश्रेणी प्रतिभाति चेतसि महावीरेषु चूडामणेः ।
तद्गर्वान्धलतानिराकृतिकृतेऽमुष्यार्द्धचन्द्राकृतिः
पाणिः साणिसृणिः स्मराङ्कुशमहाधाक.....॥ ५० ॥
केशैः केसरिणं विलङ्घ्य शशवद्धत्ते दोष्णानसौ
धत्ते चित्रकरं चरित्रमरिघो ग्राह्ये पुनश्चित्रके ।
न क्षोभं भजते तरक्षुतरसा सिंहाः पशूनाममी

पुंसिंहेन समं समत्वकथयापि स्युर्वराको यत· ।।५१।।

यदा यदोष्णत्विषिशीतलत्विषौ
धनुष्कलामर्जुनगर्जनिर्जनीम् ।
नन्वेतदीयां स्मरतस्तदा तदा
स्वमादरादावृणुतोऽभ्रवर्मणा ॥ ५२ ॥

रणाङ्गणे कोशबिलाद्विनिर्गतः
श्रितस्तदीयं करचन्दनद्रुमम् ।
पतत्कृपाणः फणभृत्विषत्यहो !
द्विषन्नृपप्राणसमीरवीचिका ॥ ५३ ॥

स्वर्गयात्रोन्मुखे ताते राज्यमेषोऽथ शिश्रिये ।
प्रभातचन्द्रे विरते यथा भानुर्नभस्तलम् ॥ ५४ ॥

राज्यश्रीर्यौवनश्रीश्च सममेनं श्रिते उभे ।
सौभाग्यभाजनं कान्तं न का कामयतेऽङ्गना ॥ ५५ ॥

ददाति धातुः किल साधुवादं
धम्मिल्लबन्धोऽस्य शुभाननस्य ।
सम्यक्कृता सृष्टिरियं यदिन्दु-
माप्तोऽपि राहुर्न विभुर्ग्रहीतुम् ॥ ५६ ॥

साम्राज्यभागयमहो ! भवितेति वर्ण-
पङ्क्तिर्विधातुरिह वार्द्धकदोषवक्रा ।
सत्पञ्चमीन्दुकुटिलभ्रु निरीक्ष्य भाल-
मस्येति चिन्तयति चेतसि चारुबुद्धिः ॥ ५७ ॥

कर्णायतस्मितविलोचनकैतवेन
विश्रान्तमस्ति मृगबालयुगं सलीलम् ।

नित्योदयः सकलता च सदा मुखेऽस्य
तेनैतदक्षतविधोर्न विशिष्यते किम् ॥ ५८ ॥
न्यायौचितीकरणतो रसनास्य साधून्
संजीवयत्यखिलदुष्टभुजङ्गदष्टान् ।
न्यायेन पूर्वगदितेन नवीनराहो-
रग्रासगोचरसुधारसपुष्टधारा ॥ ५९ ॥
इक्ष्वोर्भिक्षोः कुले कोऽपि न कश्चिदतिश्रृङ्गभाक् ।
एतद्वचनमाधुर्यकोऽप्यंशमपि यो वहेत् ॥ ६० ॥
पीयूषकुण्डमिदमीयमुखं विभाति
शुद्धा सुधा बुधजनश्रवणप्रिया गीः ।
केशोच्चयो यदधितिष्ठति नागराजो
जात्वेप मण्डलधरः किल जानुदीर्घः ॥ ६१ ॥
कल्पद्रुशाखाद्वयमस्य दीर्घे
करद्वयं चेतसि निश्चिनोमि ।
तच्छायमास्थाय नृणां स्थितानां
कुतोऽन्यथा नेनकरोपतापः ॥ ६२ ॥
ककुद्मतः स्कन्धसपत्नभूतं
स्कन्धद्वयं बन्धुरमस्य जज्ञे ।
यतोऽतिभूयानपि तद्वहः स्या-
च्चतुर्दिगन्तावधिभूमिभारः ॥ ६३ ॥
वक्षःकपाटविपुलं सुदृढं यदस्य
नोत्तानतां तदधिगच्छति गूढमन्त्रम् ।
अन्तर्द्रुतं विशति वीक्षितमात्रमेव

दुखं परस्य बहुशो ननु कोऽत्र हेतुः ॥ ६४ ॥
शोभाभिभूतकमलौ सरलाङ्गुलीकौ
छत्रध्वजादिशुभलक्षणलक्षणीयौ ।
भातः क्रमौ भृशममुष्य मनुष्यनेतुः
सेवार्थिनां सततकामितकल्पवृक्षौ ॥ ६५ ॥
अप्यन्यदङ्गं क्षितिपस्य यद्यत्
सभासदां लोचनगोचरीस्यात् ।
सौभाग्यभङ्गया भुवनातिशायि
तत्सर्वमासेचनकं बभूव ॥ ६६ ॥
अनुभवन्नपि राज्यमयं पितु-
र्यदधिकं चकमे विजयं दिशाम् ।
नहि निबन्धनमत्र सलोभता
यदतिजातसुतो यशसे पिता ॥ ६७ ॥
राजानमाजानुभुजं निशम्य तं
प्रतीपभूपा अधिक चकम्पिरे ।
तदाश्रिता श्रीरपि चञ्चलाभवद्
यद्धारकं धार्यमनु प्रधावति ॥ ६८ ॥
दिग्यात्रायै प्रतस्थेऽथ वृद्धाभिः कृतमङ्गलः ।
अङ्गचेष्टाभिरादिष्टविजयाभ्युदयो नृपः ॥ ६९ ॥
नीराजनावह्निरपि प्रदक्षिण-
श्चक्रे पटु पट्टहयोऽपि हेषितम् ।
जगर्ज राजेन्द्रगजो मदोर्ज्जितं
तदा निमित्तैः शुभदैरुपस्थितम् ॥ ७० ॥

पवित्रैश्छत्रौघैश्चमरसचिवैः शंसितशुभैः
स्वनद्भिर्निश्वानैर्विजयकथनैर्वन्दिभिरिव ।
विहङ्गैश्चाषाद्यैः स्वरगतिविशेषैश्चलितवान्
दिशं पूर्वां पूर्वापतिसदृशलक्ष्मीमधिगतः ॥७१॥
नृपांश्छिन्दन् भिन्दन् विषमतरदुर्गानदरितो
नयन्नम्रानुच्चैःपदमसहृद्दण्डानपनयन् ।
उपग्राह्यं गृह्णन् जनपदजनैरग्रनिहितं
हुमाऊवंशेन्दुर्जयति नृपतिः श्रीअकबरः ॥ ७२ ॥
उत्खाते प्रचलत्तुरङ्गमखुरैर्दानाम्बुभिर्दन्तिनां
संसिक्ते क्षितिमण्डले परिवपन् बीजं स्वतेजोमयम् ।
गृह्णन् वीरयशःफलानि विमलान्येष प्रतापार्यमा
पौरस्त्यान् विषयान् जगाम जगतीनाथः समुद्रावधीन्।७३।
पूर्वं विमत्य गर्वान्धान् संमन्यानुनतान्नृपान् ।
प्रतिवादी पुनर्वादी बुद्धिमानिव भूपतिः ॥ ७४ ॥
तत्प्राभृतं सुन्दरमाददानः
स्वयंवरां तद्विजयश्रियं च ।
स्वीकृत्य कृत्यप्रवणश्चचाल
वाचि स्थिरो भूपतिरन्वयाचि ॥ ७५ ॥
स्पृष्ट्याभ्रमन्मङ्गलदीपकोऽपि
शुभाय शस्तः किमुतावनीपः ।
प्रजास्ववस्कन्दमतोऽयमीशो
विचिन्तयामास न जातु चित्ते ॥ ७६ ॥
छायाभिराश्वासितवाजिकुञ्जरा

फलैश्च सन्तर्पितवाहिनीजना ।
कृतोपकारा शयनेषु पल्लवै-
स्तापीतटीयास्य वनी पटीयसी ॥ ७७ ॥
कावेर्युपान्तक्षितिरूढरम्भा
एतद्बलस्य व्यजनार्थदासी ।
मार्गश्रमस्वेदविनोदनार्थं
दलावलिभिः कृततालवृन्ता ॥ ७८ ॥
दाक्षिणात्येषु देशेषु विहरन्नथ लीलया ।
मलयाद्रिमनायासं जयस्तम्भं चकार स· ॥७९॥
नम्रेषु तत्र भूपेषु सार्वं कोपमवाप्य च ।
करवालेन राजेन्द्रः परप्रान्तमियेष सः ॥ ८० ॥
गलद्गभस्तिर्गतवान् प्रतीचीं
प्रतीतमेतद्रविरस्तमेति ।
अयं तु तेजो द्विगुणं बभार
सुदुस्सहं चासहनैर्महीशैः ॥ ८१ ॥
दुःखार्दिताभिरपरान्तनृपाङ्गनाभि-
र्दीर्घं यदेव हृदि निःश्वसितं तदेव ।
तत्रास्य शौर्यदहनस्य करालकान्तेः
सन्धुक्षणाय पवनोदय आदिमोऽभूत् ॥ ८२ ॥
प्रत्यग्महीशैर्महिमाविहीनैर्दीनैर्भ्रकुंसैरिव वेषधारैः ।
नरेन्द्रराजः शरणं प्रपेदे प्रणामसंन्यस्तविकोपचिह्नः ॥ ८३ ॥
कुबेरवासां दिशमन्वियाय
कुबेरवद् द्रव्यपतिः प्रभूय ।

तुदन्नुदीचीननरेन्द्रगर्वं
सर्वंकषात्युग्रमहामहीशः ॥ ८४ ॥
तं देशमादेशहठी विधिज्ञो
विलोड्य मन्था इव दध्यमत्रम् ।
जग्राह सर्वस्वमसौ यशस्वी
निवेशनीयो धुरि दोर्धनेषु ॥ ८५ ॥
पताकिनीं शैलपतेरुपत्यका-
मावासयामास धरासु वासवः ।
दवाग्निदग्धागुरुधूपधूमजै-
र्गन्धैरभिव्याप्तसमीपभूमिकाम् ॥ ८६ ॥
ततोऽयमस्माच्चमराणि चारू-
ण्यादाय चिह्नं चतुरंगलक्ष्मा ।
संजातसिद्धिः प्रयियासति स्म
श्रीमाननुश्रीकरि राजसिंहः ॥ ८७ ॥
समुद्रवेलाभिरिवोद्धताभि-
श्चमूभिराक्रान्तदिगन्तदेशः ।
चचाल भूपालवरोऽथ कुर्वन्
शेषोरगासोढभरां धरित्रीम् ॥ ८८ ॥
मया पुरेऽस्मिन्वसता समस्तं
भूमण्डलं दोर्युगसादकारि ।
इति स्वभाषामयशब्ददत्त-
फतेपुराख्यं नगरं विवेश ॥ ८९ ॥
अनेन सेनोत्थरजोनिवेशितं

भूमिभुजां छत्रवियुक्तमौलिषु ।
विनीय नीचैःपदमीश्वरेण य-
द्गुरूकृतः को न समेति गौरवम् ॥ ९० ॥
अस्मिन् प्रविष्टे पुरमुत्पताकिकं
दिक्कुक्षिपूरी जयतूरनिस्वनः ।
अस्फोटयद्व्योम ततोऽनुवेधसा
क्षिप्ता इव स्फातिगुणा उदुच्छलात् ॥ ९१ ॥
संपूर्णरूपा नरराजपुत्रीः
पूर्णां भुवं चाथ नृपोपनीताः
पाणौ चकार स्वियमङ्गहीनां
कः स्वीकरोति स्वयमङ्गपूर्णः ॥ ९२ ॥
सिंहासनासीनमिमं ननाम
सचामरं मौलिधृतातपत्रम् ।
प्रसाददानोन्मुखलोचनाभ्यां
विलोकमानं क्षितिपालवर्गः ॥ ९३ ॥
खानखानादयः खाना ऊर्ध्वदीक्षाव्रतं लुः ।
एतस्य पुरतो राज्ञः शिष्या इव गुरोः पुरः ॥९४॥
दूरादुपागतमहीभृदुपायनानि
दृष्ट्वैव पावनदृशाऽकबरो नरेन्दुः ।
भ्रूसंज्ञयैव विततार समीपगेभ्यो
मन्दारपादप इवार्थिषु दानशौण्डः ॥ ९५ ॥
नयवतां धुरि संस्थितिमादधे
नृपतिरेष तमुग्रकरं त्यजन् ।

ऋणवर्तीं क्षितिमाह यद्ग्रहे
परनृपः परचित्तकृतस्पृहः ॥ ९६ ॥
अलुब्धबुद्धिर्धरणीधवोऽसौ
न स्वप्रवृत्तावपि दण्डमाधात ।
सानुग्रहो निग्रहणीयदुष्टान्
विवर्ज्य बन्धुष्विव नागरेषु ॥ ९७ ॥
मृतस्वमोक्ता तु कुमारपालः
शुल्कस्वमोक्ता तु फतेपुरेशः ।
पुरा गवां बन्दिमपाचकार
धनञ्जयः साम्प्रतमेप एव ॥ ९८ ॥
एवं शुल्कस्य विमुञ्चतोऽस्य दिवमारोहद्यशः पावनं
दत्त्वा विक्रमकर्णभोजधरणीभाजां पदं मौलिषु ।
एकैकस्य दिनस्य पिण्डितधनं सार्वक्षितीयं यत-
स्तद्दानद्रविणाधिकं नहि निजे चेतःसमुद्रे धृतम् ॥९९॥
शुल्कं तावदनेन कल्पतरुणा सन्तोपिणा मुञ्चता
हिन्दूभ्यः सकलेभ्य एव नियतं स्वात्मातिशायी कृतः ।
साहीनां शिरसि व्रजामि किमहं चूडामणीतामिति
प्राज्ञो धेनुषु जीवितानि वितरत्येकान्तमुद्यत्कृप· ॥ १०० ॥
प्रातर्बन्धनदामनीधुतगला उत्कर्णकास्तर्णकाः
सानन्दोल्लुलनोद्यताः स्तनपय·केलिं वितन्वन्ति यत् ।
यच्चाम्बा विलिहन्ति तान् रसनया प्रेमप्रकर्षार्द्रया
दिष्ट्या तत्करुणैकभावलसितं श्रीश्रीहमाऊभुवः ॥ १०१ ॥
अपहरति महो यो मण्डलस्थग्रहाणां

रविरपि स गलज्ज्ञा वारुणीसंगरागात् ।
किमिह परमनुष्यः कर्मणां यो भुजिष्यः
क्षितिपतिरिति मद्यं सर्वनिम्थं न्यषेधत् ॥ १०२ ॥
शस्त्रं न शस्त्री दधते मदग्रतो
भवेदिमाभिः प्रकटासिधारकः ।
कामः पराभूतप्रभूतभूतिमा-
नपाचकारेति पणाङ्गना असौ ॥ १०३ ॥
अस्य क्षितिन्दोरनुशासनं नवं
चोरे गुणाभावमुरीचकार यत् ।
चौर्यस्य वृद्धिः कुत एव संभवेत्
विहाय चोरं खलु यत्र जायते ॥ १०४ ॥
दशाननस्येव जगच्चरिष्णु-
यशस्समूहस्खलनोच्चभित्ति ।
पराङ्गनां कामयते न कोऽपि
कोपि क्षणादीक्षणमस्य वीक्ष्य ॥ १०५ ॥
जितो हि यो यत्र स तत्र सक्तो
भवेदिति न्याय्यमिहाजितोऽपि ।
उच्चैस्तदासक्तिभृदित्यवद्य-
द्यूतं स्वदेशे व्यसनं न्यषेधत् ॥ १०६ ॥
सर्वप्रभुः संप्रति मद्द्वितीयो
जगन्त्यधीष्टे सचराचराणि ।
सानुग्रहोऽसौ सकलेषु भूते-
ष्वनेन तस्मान्मुमुचे मृगव्यम् ॥ १०७ ॥

शस्त्रग्रहेण धुरिलब्धसमन्तुताके
शस्त्रं विमोच्यमिति वीरजनप्रतिज्ञा ।
जन्तूनमन्तुदरितान् किमहं निहन्मि
वीरावतंस इति धीरनुकम्पतेऽसौ ॥ १०८ ॥
अन्यैर्नृपैर्यः खलु साधुवाक्य-
प्रवेशविघ्नाय निजश्रवस्सु ।
दौवारिकत्वं प्रतिलम्भितः स
निर्वासनीयोऽजनि दुर्जनोऽस्य ॥ १०९ ॥
त्वं जीव ! नंद ! विजयस्व ! चिरं जय ! त्व-
मित्याशिषं ददाति डाबरपालिसंस्थाः ।
मत्स्या नृपाय विभया जलकेलिकामो
यद्येति तद्वरमसाविति निर्निमेषाः ॥ ११० ॥
क्रूरा बका अकबरस्य महामहीन्दोः
पुण्याय चञ्चुपुटकेन तिमीन् गृहित्वा ।
आश्चर्यपूर्णहृदया अनुकम्पमाना-
स्तन्मात्रभक्षणकृतोऽपि सकृत्त्यजन्ति ॥ १११ ॥
चोलीबेगमनन्दने क्षितिपतौ नानीतयो नेतयो
दुर्भिक्षं न न विड्वरं न मरकं काले घनो वर्षति ।
काले वृक्षफलोद्गमः सरसता बाहुल्यमिक्षोर्वने
धातूनां बहुताकरेषु महिमा नेतुस्तु दृष्टेरहो ! ॥११२॥
कन्ये कासि कृपा कुतोऽसि विधुरा राजा कुमारो गत-
स्तत्किं हिंसकमानवैरहरहर्गाढं प्रमुष्टास्म्यहम् ।
स्थानाय स्पृहयामि तद्व्रज शुभे भूभामिनीभोगिनं

संप्रत्येकनृपं चिरादकबरं येनासि न व्याकुला ॥ ११३ ॥
ध्रुवं द्विषामेव चकोरचक्षुषां
निःश्वासवातेन तनीयसेरितः ।
कृपापरत्वेन सुखीकृताङ्गिनः
प्रतापदीपस्तव दीर्घसंस्थितः ॥ ११४ ॥
उद्वासितद्वेषिपुरोद्गतेषु
सुप्रापभावं कुरुषे तृणेषु ।
त्वत्स्पर्द्धयेव त्वदरातिभिस्तु
दुरापता दन्तधृतैः कृता तैः ॥ ११५ ॥
अस्मिन् भिल्लातकरसमभिज्ञानमादौ व्यधास्य-
न्नो चेद्रोगिण्युदितधिषणा तर्हि कस्मादवाप्स्यत् ।
चन्द्रं कान्तं विशदयशसा श्रीहमाऊसुतस्य
श्वेतीभावं जगति गतवत्येकराज्याधिभर्त्तुः ॥११६॥
जगद्गुरूभूय जगत्रयीपति-
र्भवांश्च हिंसादि निराकरोत्यलम् ।
जनेषु भीस्तत्र तवैव भूयसी
यस्मादनाज्ञाफलसन्निकृष्टता ॥ ११७ ॥
आदेश्यमात्मीयमिहैव सर्वे
नियोज्य जातश्चरितार्थ ईशः ।
प्रवर्त्तयन् साधुवदेव भूयः
परां धुरामुद्वहतीशभक्ते ॥ ११८ ॥
शेषूजी-पाहडी-श्रीमद्दानिआरा भवन्त्वमी ।
आयुष्मन्तः साहिजाता मूर्तिभेदा इवेशितुः ॥ ११९ ॥

त्रिष्वपि प्रकृतिबन्धुरबन्धु-
ष्वग्रजोऽस्य नृपतेः पदयोग्यः ।
चन्द्रदीपदिनपत्रिकमध्ये
भानुरेव भुवनेऽधिकतेजाः ॥ १२० ॥

भूयस्तरां परिचितैर्विदितस्वभावः
स्वामी नृणामयमयाचि मया कृपार्थम् ।
श्रीवाचकेन्द्रसकलेन्दुगुरुप्रसादा-
दुत्पन्नबुद्धिविभवाद्धृतधार्ष्ट्र्यकेन ॥ १२१ ॥

यान् सांप्रतं भरतसाधुषु लब्धसीमान्
दृष्ट्वा श्रुतान् श्रवणलोचनयोर्विवादम् ।
निन्ये स्वयं परिसमाप्तिमसौ महीशः
सत्सङ्गतावतितरां रसिकस्वभावः ॥ १२२ ॥

श्रीयुक्तहीरविजयाभिधसूरिराजां
तेषां विशेषसुकृताय सहायभाजाम् ।
जन्तुष्वमारिमदिशद्यदयं दयार्द्र-
स्तत्पुण्यमानमधिगच्छति सर्ववेदी ॥ १२३ ॥

जालच्युतस्तिमिगणस्तिमिभिर्मिमेल
पोतांश्चुचुम्ब खगवृन्दमपास्तपाशम् ।
स्तन्योपनीतसुरभी कुलमार वेगाद्
यत्तद्विजृंभितममुष्य कृपालुमूर्त्तेः ॥ १२४ ॥

जीवेषु जीवितसुखं ददता ह्यनेन
यत्पुण्यमर्जितमुदारमुदारभावात् ।
राजन्यलोकसहितः सह साहिजातै-

स्तेनायमभ्युदयवान् भवताच्चिराय ॥ १२५ ॥

यज्जीजिआकरनिवारणमेष चक्रे
या चैत्यमुक्तिरपि दुर्दमसुद्गलेभ्यः ।
यद्बन्दिबन्धनमपाकुरुते कृपाङ्गो
यत्सत्करोत्यवमराजगणो यतीन्द्रान् ॥ १२६ ॥

यज्जन्तुजातमभयं प्रतिमासषट्कं
यच्चाजनिष्ट विभयः सुरभीसमूहः ।
इत्यादिशासनसमुन्नतिकारणेषु
ग्रंथोऽयमेव भवति स्म परं निमित्तम् ॥ १२७ ॥

मात्सर्यमुत्सार्य कृतज्ञलोकै-
र्ग्रन्थोऽनुकम्पारसकोशनामा ।
संशोधनीयः परिवाचनीयः
प्रवर्त्तनीयो हृदि धारणीयः ॥ १२८ ॥

इति श्रीकृपारसकोशग्रंथः संपूर्णः ॥

पातसाहिश्री-अकबर-महाराजा-
धिराजप्रतिबोधकृते महोपा-
ध्यायश्रीशान्तिचन्द्र-
गणिविरचितः ॥

कृपारसकोशका संक्षिप्तसार।

[नोट —इस प्रबन्ध में लेखक ने फक्त काव्यदृष्टि से वर्णन किया है। कवि का कर्म केवल अकबर की प्रशंसा करने का था न कि जीवन-चरित्र लिखने का। इस से पढते समय पाठक इतिहास की ओर लक्ष्य न रक्खें।]

जिस परमात्माने अपने ज्ञान स्वरूप नेत्र से संपूर्ण जगत् को हस्तस्थित-आमलक की तरह देखा है, राग-द्वेष रहित जिस ज्ञानात्माने अखिल विश्व को ज्ञानद्वारा व्याप्त किया है और अनुग्रहबुद्धि-वाले जिस भगवान्‌ने सब जनों के हित की चिन्ता की है, उपकार के भार को वहन करने में वृषभ के समान उस समर्थ स्वामी का हम ध्यान-चिन्तन करते हैं। जिस को न लोभ है, न क्षोभ है, और न काम-क्रीडा है, जो दोषों का पोषण भी नहीं करता और रुष्ट-तुष्ट भी नहीं होता; तथा संसार के सभी भाव जिस को स्फुट तया ज्ञात है उस परम पुरुष की हम उपासना करते हैं। सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से रहित ऐसे जिस पवित्र प्रभु ने इस जगत् को सनाथ-रक्षित किया है, आप्तपुरुषों के द्वारा कथित होने पर भी जिस का अ-लक्ष्य-चरित्र, स्थूल-दृष्टि वाले सामान्य जनों को दुर्लक्ष्य ही है, विविध प्रकार की वचन-भङ्गियों द्वारा भी जिस के वचनों का भाव कहना अशक्य है और महान् योगियों को भी जो अगम्य है उस सुन्दर गुण वाले तथा सर्वदा श्रेष्ठ-आनन्द वाले परमात्मा को नमस्कार है। सामुद्रिक लहरों से जिस प्रकार उस का मध्यवर्ती द्वीप अनाच्छादित रहता है वैसे परमात्मा भी सांसारिक अविद्यायों से सदा अलिप्त है। यह परमेश्वर, अमर्यादित ऐसे संसार समुद्र के भी उस-अनिर्वचनीय-पार पर विराजित है। अथाह ऐसे सागर के भी कमल क्या ऊपर नही रहता?

हृदय को रंजन करने वाले उस सज्जन को हमारा नमस्कार है जो अप्रिय-व्यक्ति के विषय में भी प्रिय-भाषण और प्रिय-कार्य करने वाला है। क्यों कि उस के मन और जीह्वा को ब्रह्माने किसी अच्छे मधुर और निर्मल द्रव्य से बनाया है। सज्जनों का उपकारी वह खल (दुर्जन) भी सत्कार करने योग्य है जिस के दुष्ट-आचरण और विपरीत-प्रदर्शन से, हरडे के कारण जैसे जल का मधुर गुण व्यक्त होता है वैसे, अस्पष्ट भी सुजनों के गुण प्रकट हो जाते हैं।

सुन्दर संपत्ति-शाली और सुख का स्थान तथा जो जगत् में प्रसिद्ध है, पक पक कर झाड के शिरे से नीचे गिरी हुई खजूर के ढेरों से जहां के गाँवो के आस पास की जमीन चलने में भी कठिनता देने वाली है, जहां पर पतले कान, ऊंचे खंधे, वांके मुंह और रोषान्ध मन वाले केवल घोडे होते हैं—परंतु राजा नहीं, इन्द्र के उच्चैः-श्रवा नामक घोडे के जैसे जहां के उत्तम जाति वाले, घोडे राजाओं को विजय-लक्ष्मी संपादन करने में एक अनुपम साधन हैं और धान्यों की तरह जहां पर जगह जगह अखोड आदि उत्तम प्रकार का मेवा उत्पन्न होता है वैसा एक रसाल जमीन वाला खुरासान नाम का सुन्दर देश है।

इस खुरासान देश में, अन्य नगरों में अग्रपद पाने योग्य काबुल नाम का नगर है, जिस की दिवारें बडी उंची उंची है। जहां की उच्चस्तनवाली स्त्रियें सदा पडदे में रहनी वाली होने से कभी सूर्यका दर्शन नहीं करतीं। नगर के समीप की विशाल भूमी बागीचों के वृक्षों की छाया से सदा ढंकी रहती है। जहां पर यथा समय ही मेघ वर्षता है, बिजली चमकती है और वृक्ष फलते हैं। प्रचंड-शासनधारी शासकों को देख कर जहां पर सब दिशाओं से आ आ कर लक्ष्मी ने निवास किया है। जहां पर, स्नेह (तैल) का नाश केवल दीप में, अस्त होने वाला उदय केवल सूर्य में और आपद्वाली संपद् केवल चंद्र में देखी जाती है, परंतु मनुष्यों में नहीं।

इस काबुल नगर में, मुगलों का स्वामी बाबर नामका बादशाह

था जो प्रसन्न-हृदय वाला और समस्त शत्रुओं का संहार करने वाला था। वैरियों के दल को बालने वाला उस का तेजोराशि, शत्रुओं की स्त्रियों के लोचनों के अश्रु-प्रवाह को दहन करने के लिये वडवानल के समान था। उस के धनुष्य पर डोरी खींचते ही शत्रुओं की उत्कट भ्रकुटियें नीची हो गई थीं और उस पर बाण चढाते ही उन की लडने की हिंमत छूट गई थी। उस बाबर के एक हुमायु नाम का पुत्र हुआ जिस को गर्भ में धारण करते समय उस की माता, मुक्ताफल को धारण करने वाली शुक्ति के समान, शोभती थी। क्रम से यह पुत्र रत्न तेज से, उम्र से और गुण से, ग्रीष्मकाल के सूर्य समान, शत्रुओं के लिये दुस्सह होने लगा। परस्पर मानों ईर्ष्या कर के ही सभी कलाये इस को प्राप्त हुई। धनुष्यधारियों में यह सब से प्रथम पंक्ति में गिना जाने लगा। बाबर ने इस को सब प्रकार से योग्य जान अपना राज्यमुकुट इसे पहनाया। इस हुमायु नृप के चोली-बेगम नाम की, विष्णु को लक्ष्मी की तरह, प्रिय स्त्री थी। जिस तरह, अनेक ताराओं के रहने पर भी रोहिणी ही चंद्र को अधिक प्रिय होती है वैसे अनेक स्त्रियों में भी हुमायु को यही अधिक प्रेम पात्री पत्नी थी। मालूम होता है कि इस रानी के मुख और नेत्र से ही पराजित हो कर चंद्र और हरिण दोनों इकट्ठे हुए हैं और उन पर-रानी के मुख और नेत्र पर-विजय प्राप्त करने के लिये एकांत में कोई परामर्श चला रहे हैं। अन्यथा चंद्र जो गगनगामी है और हरिण जो भूचारी है, इन दोनों का एक स्थान पर संगम कैसे हो? यह अपने शरीर पर जो गहने पहन ती थी उन से इस के शरीर की शोभा नही बढती थी परन्तु इस के शरीर की कांति से उन आभूषणों की सुन्दरता बढती थी। अर्थात् रानी का सौन्दर्य ही भूषणों का आभूषण था। इस तरह राजा और रानी के राज्यलक्ष्मी भोगते हुए कुछ समय व्यतीत हुआ।

जैसे रत्न की खान श्रेष्ठ रत्नों को धारण करती है वैसे ही इस रानी ने एक समय सूर्य के समान तेजस्वी गर्भ को धारण किया। यह गर्भ अपने निर्मल कुल को हर्ष पैदा करने वाला हो कर सुन्दर

स्वप्नों से भावी महान् अभ्युदय की सूचना करने वाला था। रानी ने, इस गर्भ के अनुभाव से अनेक उत्तम उत्तम स्वप्न देखे। अच्छे अच्छे दोहद भी उत्पन्न हुए जिन को बादशाह ने पूर्ण किये। गरीब-गुरबों को बहुत सा उस ने दान दिया। अप्रिय करने वालों की तरफ भी उस ने अपना सद्भाव बताया तथा दासीजनों के कठोर भाषण करने पर भी कभी असभ्य शब्द नही निकाला। संपूर्ण दिन हो जाने पर, जिस तरह पूर्णिमा पूर्ण चंद्र को प्रकट करती है वैसे उस बेगम ने सर्वांग सुन्दर और पूर्ण भाग्यवान् पुत्र को जन्म दिया।

बादशाह हुमायु ने पुत्र का खूब जन्मोत्सव किया। जगह जगह पर वेश्याओं के नाच, कुल कामिनियों के गान और याचकों के शुभाशीर्वाद हुए। अच्छा शुभ दिन देख कर बादशाह ने अपने पुत्र का 'अकबर+' ऐसा नाम स्थापन किया। माता पिता के हर्ष के साथ बढता हुआ यह अकबर बरोबरी के राजपुत्रो के साथ नाना प्रकार के खेल खेलने लगा और किसी को मंत्री, किसी को छडी-दार, किसी को सेनापति तथा किन्ही को प्रजा आदि बना कर उन मे अपना प्रभुत्व की कल्पना करने लगा। बुद्धिमान् मनुष्यों को इस की इस क्रीडा में भावी महान् सम्राटत्व का अनुमान हो जाता था। जिस प्रकार शुक्ल-पक्ष का चंद्रमा दिन प्रतिदिन कृशता का त्याग कर पूर्णता को प्राप्त करता जाता है वैसे यह अकबर भी अपने बाल-भाव को छोड कर प्रतिदिन प्रौढावस्था को धारण करने लगा। थोडे ही समय में इस ने सब कलाओं मे निपुणता प्राप्त कर ली। घोडों को चलाने में यह बडा अद्वितीय निपुण था। जो घोडा दूसरों के चलाने पर मिट्टी का सा बना हुआ जान पडता था और पैर पैर पर रुक जाता था वही इस के चलाने पर पवन की

+ विद्वान् लोक 'अकबर' शब्द का यह अर्थ करते हैं कि:—'अ' विष्णु, 'क' काम और आत्मा, इन तीनों में जो 'वर' श्रेष्ठ जैसा-अर्थात् विष्णु के जैसा समर्थ, काम के जैसा सौंदर्यवान् और आत्मा के जैसा निर्मल-वह अकबर।

तरह आकाश मे ऊछलने लगता था। बडे बडे मदोन्मत्त हाथियों के लंबे लंबे दांत तो इस के चढने के लिये सीढियो का काम देते थे। इस की वज्र के जैसी मुट्ठी ही हाथियों के लिये तीक्ष्ण अंकुश रूप थी। यह केवल हाथ ही से केसरी-सिंह की सटा को पकड कर उसे, खरगोस की तरह, बांध लेता था। अर्जुन की तरह धनुष्य चलाने मे भी यह बडा कुशल था। इस के हाथ मे रहा हुआ खड्ग शत्रुओं का प्राणनाश करने में, काले सॉप का अनुकरण करता था।

जैसे प्रातःकालिक चंद्र के अस्त होने पर नभोमंडल का स्वामी सूर्य बनता है वैसे हुमायु के परलोक वासी होने पर अकबर पृथ्वीमंडल का अधिपति बना। राज्यश्री और यौवनलक्ष्मी रूप दोनो स्त्रियें एक ही साथ अकबर के सम्मुख आ कर उपस्थित हुई-क्यों कि जो असाधारण सौन्दर्यवान् होता है उसे कौन स्त्री नही चाहती?। अकबर के मुंह की बराबरी चंद्र भी नही कर सकता है। क्यों कि वह तो सदोदित और संपूर्ण कलावान् नही रहता है और इस का मुंह तो नित्योदय और सकल कला सहित है। दुष्ट मनुष्य रूप सर्प से डसे जाने वाले मनुष्य को अकबर की जबान अमृत का काम देती है-अर्थात् यह अपने न्यायोचित आदेश द्वारा अन्यायी जनो को पूरी शिक्षा देता है। अकबर के वचन की मधुरता की समानता करने वाली, सक्कर और साधु-वचन में भी मीठास नही है। याने इस का मीठा वचन सक्कर और साधुवचन करते भी लोकों को अधिक मधुर लगता है। कवि कल्पना करता है कि—अकबर का जो मुंह है वह तो अमृत कुण्ड है और उस का जो मिष्ट-वचन है वह अमृत रस है जिस की रक्षा, जानु तक लंबा ऐसा मस्तक पर का केश-समूह रूप काला सॉप निरंतर कर रहा है (अमृत की रक्षा सर्प करता है, यह प्रसिद्ध बात है।) इस के दोनों हाथ कल्प वृक्ष के जैसे हैं, क्यो कि जैसे कल्पवृक्ष की नीचे बैठने वाले मनुष्य को किसी प्रकार का संताप नही होता वैसे इस की भुजा-छाया के आश्रय मे रहने वाले मनुष्य को भी किसी प्रकार का संताप नही होता है। कवि कहता है—इस अकबर का वक्षःस्थल न जाने किस

चीज का बना हुआ है ? यह पता नहीं लगता। क्यों कि एक तरफ तो इस का हृदय इतना कठोर मालूम देता है कि जिस मे की गूढ बात किसी प्रकार बहार निकल ही नही सकती। और दूसरी तरफ, दूसरे का दुःख देखते ही इस का अंतःकरण शीघ्र पिघल जाता है। छत्र, ध्वजादि शुभ लक्षणो वाले इस के सुंदर पैर अपनी शोभा से विकशित कमल को भी पराजित करते है। इस प्रकार इस के सभी अंग संपूर्ण सौन्दर्य वाले हो कर देखने वाले के मन को अपूर्व आनंद देते है।

अकबर अपने पिता का राज्य प्राप्त कर जगत् में विशेष विजय करने की इच्छा करने लगा। यह इच्छा लोभ के कारण नही परंतु पिता के यश की विश्वमें ख्याति करने के उद्देश से उत्पन्न हुई थी। अच्छे मुहूर्त मे इस ने दिग्विजय करने के लिये प्रयाण किया। प्रयाण करते समय सभी प्रकार के शुभ शकुन हुए। अकबर के विजयनिमित्त प्रयाण को सुन कर बहुत से राजे कम्पित हो ऊठे और उन की लक्ष्मी भी चंचल हो गई। यह नियम ही है कि आधेय पदार्थ आधार ही के पीछे गमन करते है। बादशाह ने, इन्द्र की सी शोभा को धारण कर, पहले पूर्व दिशा में प्रस्थान किया। नाना प्रकार के दुर्गम और अजेय दुर्गों को जीतता हुआ, अनेक राजाओ को वश करता हुआ, किसी का उच्छेद और किसी का भेद करता हुआ, जो अभिमानी था उस का मान उतार कर, नम्र हो जाने पर फिर उसे अपने राज्य पर स्थापित करता हुआ और उन उन देशवासियो द्वारा भेट किये गये पदार्थों का स्वीकार करता हुआः अकबर, ठेठ पूर्व दिशा के समुद्र पर्यंत के देशों तक चला गया।

वहां से बादशाह दक्षिण की ओर रवाना हुआ। इस तरफ के भी गर्विष्ठ नृपतियों को पहले अपमानित कर और फिर उन के नम्रता स्वीकार लेने पर पुनः सन्मानित किये। अपनी इस विजय-यात्रा मे बादशाह ने प्रजा को जरा भी कष्ट न दिया। केवल शत्रु-वर्ग ही को उस ने गतगर्व और वनवासी बनाया-औरों को नहीं। दक्षिण मे जाता हुआ बादशाह तापी नदी के किनारे पर पहुंचा।

उस ने, अपने तट पर लगे हुए विशाल वृक्षों की गहरी और शीतल छाया द्वारा हाथी, घोडे आदिको को आश्वासन दे कर, सुंदर फलो द्वारा सैनिकों के मन संतुष्ट कर और नये नये कोमल पत्रों द्वारा सुखद शय्या का सुख दे कर, बादशाह का स्वागत किया। आगे जाने पर काबेरी नदी आई, जिसने भी अकबर के सैन्य का मार्गजन्य परिश्रम दूर करने के लिये, अपने किनारे पर खडे हुए उँचे उँचे झाडों की पत्रावलि द्वारा, हाथ में पंखा लिये हुए मानों दासी का रूप धारण कर, अकबर का आतिथ्य सत्कार किया। इस को पार कर, दक्षिण के विविध देशों में लीला पूर्वक विचरण करते हुए बादशाह ने विना ही श्रम से मलयाचल को अपना जय-स्तंभ बनाया।

वहां के राजाओं के खजानों में से अगण्य धन प्राप्त कर बादशाह ने पश्चिम की ओर अपना सैन्य प्रवाह बहाया। पश्चिम दिशा में जाने से तो सूर्य का तेज भी क्षीण हो कर अंत मे अस्त हो जाता है पर अकबर के विषय में इस से उलटी बात हुई। इस दिशा में जाने से शत्रुओं को दुःसह ऐसा इस बादशाह का तेज दुगुना प्रज्ज्वलित हुआ। शत्रु नृपतियों की दुःखपीडित स्त्रियों के संतापपूर्ण हृदयों में से जो कष्ट भरे निःश्वास निकलते थे उन्हों ने अकबर के शौर्यरूप अग्नि को अधिक उद्दीप्त करने मे प्रचंडपवन का काम दिया। बहुत से राजाओं ने अपना गर्व छोड कर, स्त्री वेषधारी नर्तक के समान, स्त्री के वेष को पहन कर और दीन हो कर राजाधिराज अकबर की, जो शत्रु को भी नम्र हो जाने पर पूर्ण शरण देता है, शरण ली।

इस प्रकार पश्चिम में विजयी हो कर, अनेक नृपतियो का पराभव करता हुआ और कुबेर के समान विपुल ऐश्वर्यवान् बन कर, कुबेर ही की दिशा जो उत्तर है उस की ओर बादशाह चला। पराक्रमियो में प्रधान और अपनी आज्ञा का पालन कराने मे आग्रही ऐसे इस बादशाहने, जिस प्रकार दही का मंथन कर उस का सार—नवनीत-निकाल लिया जाता है वैसे, उत्तर देशों का दलन कर वहां का सर्वस्व अपने स्वाधीन किया। धरातल के इन्द्र समान इस नृप-

राज ने, उत्तर में ठेठ हिमालय की उस तराई में जा कर अपने सैन्य को ठहराया जहां दावानल से जले हुए अगुरु वृक्षों के धूप-धूम्रों से सारा मैदान सुगंधमय हो रहा था।

इस प्रकार पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर-चारों दिशाओं में विजय प्राप्त कर, अपनी इष्ट-सिद्धि की पूर्णाहुति हो जाने से, बादशाह अपनी राज्यधानी सिकरी की ओर रवाना हुआ। समुद्र के तरंगों के समान अपने सैन्य द्वारा सारे भूमंडल को व्याप्त करने वाले राजाधिराज अकबर शाहने सिकरी शहर में जब प्रवेश किया तब इस की समृद्धि का इतना बोजा पृथ्वी पर जमा हुआ कि जिसे शेषनाग भी उठाने मे असमर्थ होने लगा। 'मैंने इस स्थान में रह कर समग्र पृथ्वीमंडल को फतह किया है—अपने स्वाधीन किया है' ऐसा विचार कर बादशाह ने अपनी मातृभाषा में उस नगर का "फतहपुर" ऐसा-नया नाम स्थापन किया।

अनेक देश के राजाओं की भेंट की हुई राजपुत्रियों के साथ समग्र प्रदेश की पृथ्वी का स्वामी बन कर बादशाह आनंदपूर्वक अपने वैभव का सुख भोगने लगा। छत्र और चामर धारण किये हुए, सिंहासन पर बैठे हुए और प्रसन्न नेत्रों से सभी की ओर देखते हुए इस बादशाह को आज्ञाधीन राजाओं ने आ आ कर प्रणाम किया। खानखाना आदि बडे बडे अमीर और उमराव, जिस तरह गुरु के सामने शिष्य खडे रहते हैं वैसे, बादशाह के आगे खडे रहने लगे।

अकबर के सुकृत्यों का वर्णन।

कल्पवृक्ष के समान याचकों के प्रति अति उदार ऐसे इस बादशाह ने, दूरसे आए हुए राजाओं के उपहारों को सीर्फ प्रसन्न-दृष्टि से देख कर ही, इसारे द्वारा, पास में बैठे हुए लोकों को दे दिये। औरों के धनकी वांछा करने वाले दूसरे राजा जिस कर के न लेने

से पृथ्वी को कर्ज वाली मानते है उसी महान् कर का त्याग कर इस बादशाह ने नीतिमानों मे अग्रपद प्राप्त किया। शिक्षा पाने योग्य दुष्ट मनुष्यों को छोड कर शेष सभी नगर-निवासियों पर बन्धु की तरह प्रेम रखने वाले और निर्लोभवृत्ति वाले इस बादशाह ने स्वप्न में भी किसी को दण्डित नही किया। पहले मृतक-धन को राजा कुमारपाल* ने छोडा था और अब इस समय अकबर बादशाह ने कर सम्बन्धी धन को छोड दिया है। पहले गायों को बन्धन-मुक्त अर्जुन ने किया था और इस समय वध-मुक्त अकबर ने किया है। प्रजा के पास से लिये जाने वाले कर का त्याग कर ने से इस बादशाह का उज्ज्वल यश कर्ण, विक्रम और भोज जैसे दानवीर नृपतियों के यश को भी उल्लंघ कर, ऊँचे स्वर्ग में चढ गया है। क्यों कि उन राजाओं ने जो धन दान किया है वह, इस बादशाह के राज्य में उत्पन्न होने वाले एक दिन के भी कर-धन की बराबर नही था। इस महान् कर-धन को छोड कर तो इस बादशाह ने संपूर्ण हिन्दु नृपतियों में उच्च पद प्राप्त किया और उत्कृष्ट दयालुता धारण कर तथा गौ-वध का निषेध कर कुल तमाम मुसलमान बादशाहों में भी सर्वोत्तम स्थान का स्वामी बना है। प्रातःकाल में, खूंटे की रस्सी से छूट कर, उँचे कान किये और आनंद के मारे ऊछलते कुदते बछडे जो अपनी माताओं का प्रेमपूर्वक दूध पीते

* कुमारपाल गुजरात के महाराज थे। उन्हों ने विक्रम संवत् ११९९ से १२३० तक राज्य किया। वे जैनधर्मानुयायी नृपति थे। सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्रीहेमचन्द्रसूरि के सदुपदेश से उन्हों ने अपने विस्तृत राज्य में द्यूतखेलन, मांसभक्षण, मद्यपान, वैश्यागमन आदि सातो कुव्यसनों का सर्वथा निषेध कर दिया था। उन के पहले, राज्य मे यह एक पुरातन नियम प्रचलित था कि जो कोई मनुष्य सन्तान रहित मर जाता था उस के सर्वस्वका मालिक राज्य बनता था। इस नियम से मरने वाले के निराधार स्त्री आदि कुटुम्बियों को बडा कष्ट पहुंचता था। महाराज कुमारपाल ने अपने राज्यत्व काल मे इस कष्टप्रद नियम को बन्ध कर दिया था।

हैं और गायें भी हर्षभर अपने बच्चों का शरीर चाटती है; यह सब अकबर बादशाह की दया ही का प्रताप है। जो स्वयं उच्च-नीच आदि सब ग्रहों का स्वामी है वह सूर्य भी वारुणी (पश्चिम दिशा) का संग प्राप्त कर अस्तदशा को प्राप्त हो जाता है तो फिर सामान्य मनुष्य, जो कर्मों के दास है, उन का तो कहना ही क्या ? ' ऐसा विचार कर सर्व प्रकार से निन्द्य ऐसी वारुणी (मदिरा-दारू) का इस बादशाह ने निषेध कर दिया। कोई भी शस्त्रधारी मेरे सामने शस्त्र नहीं रख सकता, इस खयाल में बादशाह ने वैश्याओं, जो कि काम का शस्त्र धारण करने वाली है, उन का बहिष्कार किया। कवि कहता हैः-इस बादशाह का शासन कोई नये ही प्रकार का है जो चोरों में अपने गुणों का अभाव करता है । अर्थात् चोर चोरी करना ही भूल गए हैं जिस से कहीं पर चौर्य-शब्द सुनाई ही नहीं देता है। इस बादशाह के कोपयुक्त नेत्र की भयंकरता का स्मरण कर कोई मनुष्य किसी परस्त्री के सामने नहीं देखता। ' पराजित मनुष्य का ही विजेता के आधीन होना न्यायसङ्गत बात है परंतु द्यूत के विषय मे यह नीति बराबर नहीं पाली जाती। द्यूत (जूआ) के आधीन जीतने वाला और हारने वाला-दोनों हो जाते हैं। ऐसी बदनीति मेरे राज्य मे नहीं चलनी चाहिए; ऐसा विचार कर बादशाह ने द्यूत खेलना बन्ध कर दिया। ' इस समय, इस चराचर जगत् का स्वामी एक तो ईश्वर और दूसरा मै हूं। जिस में ईश्वर तो संसार के सभी जीवों पर दया करता है, तो फिर मुझे भी सब पर दया ही रखना चाहिए। ' यह सोच कर बादशाहने शिकार खेलना भी छोड दिया। ' वीरपुरुषों की यह प्रतिज्ञा होती है कि-जो अपराधी, शस्त्र उठाकर बडा अपराध करता है उसी पर वे अपना शस्त्र चलाते है, औरों पर नहीं, तब मैं शूरवीरों में शिरोमणि कहला कर इन निरपराध और भयाकुल पशुओ पर कैसे अपना शस्त्र चला ऊँ ? ' यह विचार कर बादशाह सभी प्राणियों पर रहम करता है। सज्जनों के सुवाक्य अपने कान में न आसके इस हेतु से और नृपतियों ने जिन दुर्जनों को अपने दौवारिक (दरबान) बना रक्खे है,

उन को इस बादशाह ने अपने निकट भी नही आने दिये। यदि यह बादशाह जलक्रीडा की इच्छा से यहां पर आवें तो बहुत अच्छा हो, इस उत्कंठा से आंखों के बिना मूंदे (निर्निमेष हो कर), इस बादशाह की राह देखते हुए डाबर-तालाव के मत्स्य आशीर्वाद दे रहे हैं कि 'हे बादशाह तूं चिरंजीव! जय! विजय! वृद्धिमान् हो।' अर्थात् बादशाहने डाबर तालाब के मत्स्यों के वध का निषेध कर दिया। बादशाह की इस दया का अनुकरण, जिन का भक्ष्य केवल मत्स्य मात्र है ऐसे बगले भी करने लगे। वे भी मछली को अपने मुंह में पकड कर एक बार उसे फिर छोड देते (बगलों का ऐसा स्वभाव होता है।)

इस बादशाह के सौराज्य में न कहीं अनीति है, न परराज्य का भय है, न बिमारी है, न दुर्भिक्ष पडता है और ना ही राज की तरफ से कोई कष्ट है। समय पर ही मेघ बरसता है और समय पर ही वृक्ष फलते हैं। ईख में बहुत मीठास भरी हुई है और खानों में बे सुमार धातु निपजती है। इन सब आश्चर्यकारक बातों का कारण इसी स्वामी की सुदृष्टि के प्रताप को समझना चाहिए। कवि अकबर के दयाकी महिमा बतलाने के लिये एक कल्पना करता है, कि किसी व्यक्ति ने दया देवी को उदासीन दशामे देख कर, उस से कुछ सवाल-जबाव किये, जो इस प्रकार के थे।

व्यक्तिः—(दया से) 'हे कन्ये! तूं कौन है?'

दयाः—'मैं दया-कृपा हूं'

व्यक्तिः—'तूं विह्वल क्यों है?'

दयाः—'मेरे स्वामी कुमारपाल चले गये'

व्यक्तिः—'तो फिर क्या हुआ?'

दयाः—'स्वामी के अभाव में हिंसक मनुष्य मेरा सर्व नाश कर रहे हैं'

व्यक्तिः—'तो अब क्या चाहती है?'

दयाः—'किसी आश्रयदाता को जो मेरा पालन करे'

इस पर व्यक्ति ने कहा:—' यदि तेरी यह इच्छा है तो समग्र पृथ्वी के स्वामी बादशाह अकबर के पास जा, वह तेरा पालन करेगा। '

मतलब यह है कि कुमारपाल राजा के बाद अकबर बादशाह ने ही दया की विशेष पालना की।

कवि बादशाह को उद्देश कर कहता है:-हे नरेश ! दयापरायणता से जीव मात्र को सुखी करने वाले ऐसे तुमारे प्रतापका दीपक शत्रुओं की स्त्रियों के बहुत कम ऐसे निःश्वास-पवन से प्रेरित हो कर मानों चिरकाल तक ठहर गया है। (शत्रुओं के नाश हो जाने पर ही विजय का तेज चिरकाल तक प्रदीप्त रह सकता है। तथा थोडे से पवन के सहारे से ही दीपक जल सकता है।) हे राजेन्द्र ! जहां के शत्रुओं को तुमने देशनिकाल दिया है ऐसे नगरों में ऊगी हुई घास की सुलभता को तुम बढा रहे हो यह जान कर ही, मानों स्पर्द्धा से, तुमारे शत्रु घास को मुंह में डाल डाल कर उस की दुर्लभता बढा रहे हैं। मतलब कि, शत्रुओं के शहर उजड़ पडे हैं और उन में खूब घास ऊग रही है तथा शत्रु निर्वासित होकर जंगलों में घास खाते फिरते हैं। यदि बुद्धिमती चन्द्रपत्नी रोहिणी ने, पहले ही अपने पति चंद्रमा पर निशानी के लिये, काला दाग न बना देती तो अकबर के उज्ज्वल यश से इस समय जब सारा ही जगत् श्वेत हो रहा है तब, वह अपने पति को कैसे पहचान सकती।

कवि बादशाह से कहता है-हे नरेश ! आप जगत् के स्वामी और गुरु बन कर (अकबर अपने को जो जगद्गुरु और जगदीश्वर के बिरुद से प्रसिद्ध करता था उस को लक्ष्य कर यह कथन है) जो हिंसादि दोषों का निवारण करते हैं इस से सब प्राणी पर-

स्पर के भय से तो मुक्त है परंतु स्वयं आप के भय से—आप की आज्ञा का उलंघन होने पर शीघ्र ही मिलने वाले कठोर दण्ड के डर से-वे सदा शंकित रहते हैं; यह आश्चर्य की बात है।' अर्थात् अकबर की आज्ञा का भय मृत्यु के भय से भी अधिक कठोर है। ईश्वर तो अपने सभी आदेशों को इस बादशाह पर रख कर कृतकृत्य हो गया है; और यह अकबर भी साधु पुरुषों की तरह ईश्वर के आदेशों का प्रचार करता हुआ, ईश्वर-भक्तों में अग्रपद प्राप्त कर रहा है। इस बादशाह की ही दूसरी प्रतिकृतियों समान शेखूजी (शेख सलीम), पहाडी (मुराद) और दानियारा नामक तीनों शाहजादे आयुष्यमान् हों। दीपक, चंद्र और सूर्य इन तीनों तेजस्वी पदार्थों में जैसे सूर्य ही अधिक प्रतापवान् गिना जाता है वैसे इन भाईयों में भी बडे भाई-शेखूजी ही बादशाह पद के पाने योग्य हैं।

यहां से आगे का कथन कवि अपने विषय में कहता हुआ लिखता है—अत्यंत परिचय के कारण, स्वभाव का ठीक ठीक परिज्ञान हो जाने से, मनुष्यों के स्वामी इस अकबर बादशाह से मैंने दया की याचना की। इस याचना करने में अपेक्षित साहस और बुद्धि-वैभव, इन दोनों के होने मे खास कारण मेरे गुरु श्रीसकलचन्द्र वाचकेन्द्र का पवित्र प्रभाव ही है। वर्तमान समय में जिन्हों ने भारत वर्ष के साधुओं में अग्रपद पाया है, जिन के नाम का पहले कई दफे श्रवण कर, तथा अभी दर्शन कर, सत्संगति-रसिक बादशाह ने अपने श्रवण और नेत्र का विवाद शांत कर दिया है; और जो सुकृत्यों के करने-कराने मे विशेष सहायता करने वाले हैं; उन श्रीहीरविजय सूरीश्वर को इस नरनाथ ने जो अमारिशासन-जीवो के वध के निषेध का शाही फरमान-दिया है उस के पुण्य का प्रमाण केवल सर्वज्ञ ही जान सकता है और नही। मच्छीमारो की जालों से मुक्त होकर जो मत्स्य-गण, अपनी प्रिय मछलियो से जा मिला, चिडीमारो के पासों में से छूट कर जो पक्षिसमूह ने अपने बच्चों का चुम्बन किया और दुग्ध से

जिन के स्तन भरे हुए हैं ऐसी सुन्दर गायें अपने प्रिय वछडों के प्रेम के कारण जल्दी जल्दी जो स्वकीय स्थानो की ओर दोडी जा रही हैं; यह सब दयामूर्ति इस अकबर बादशाह की दया ही का परिणाम है। इस बादशाह ने अपनी अपार उदारता से जगत् के जीवों को जीवन-सुख प्रदान करते हुए जो महत्पुण्य उपार्जन किया है उस के प्रभाव से यह सम्राट् अपने प्रिय पुत्रो के साथ चिरकाल तक अभ्युदय को प्राप्त करें-(यही शुभाशीष है।)

अंत में कवि अपने इस ग्रंथ के द्वारा जो जो कार्य हुए उनका बहुत संक्षेप में उल्लेख करते हुए कहता है—इस बादशाह ने जो जजिया कर माफ किया, उद्धत मुगलों से जो मंदिरों का छुटकारा हुआ, कैदम पडे हुए कैदी जो बन्धन रहित हुए, साधारण राजगण भी मुनियों का जो सत्कार करने लगा, साल भर में छः महिने तक जो जीवों को अभय दान मिला और विशेष कर गाये, भैंसें, बैल और पाडे आदि जो पशु कशाई की प्राणनाशक छुरि से निर्भय हुए, इत्यादि शासन की समुन्नति के—जैनधर्म की प्रभावना-के जगत्प्रसिद्ध जो जो कार्य हुए उन सब मे यही ग्रंथ (कृपारस कोश) उत्कृष्ट निमित्त हुआ है-अर्थात् इसी ग्रंथ के कारण उपर्युक्त सब कार्य बादशाह ने किये हैं। कृतज्ञ लोगों के प्रति प्रार्थना है, कि वे निर्मत्सर हो कर इस ग्रंथ का संशोधन, पाठन और प्रचार करें-किंबहुना? इसे सर्वथा हृदय में धारण करें।

शिवमस्तु सर्वजगतः
परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः ।
दोषाः प्रयान्तु नाशं
सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥

कृपारसकोश की कुछ महत्त्व की अशुद्धियों का शुद्धिपत्र

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
१	१४	दोषपोषौ	दोषपोषो
१	१७	निर्द्वन्देन	निर्द्वन्द्वेन
१	९	स्फुटो-	-ऽस्फुटो-
२	११	गुणोज्ज्वल-	गुणो जल-
३	२३	दलिकं	दलिकः
५	१६	-ऽ स्याः	सा
७	१३	-पटह-	-पटहा-
७	१९	इतीव	इती च
१५	८	स्फर्धि-	स्फूर्चि-
१६	३	परचित्त-	परवित्त-

इस पुस्तक के संपादक की सब पुस्तकें नीचे लिखे ठिकानों पर मिलेंगी।

श्री जैन आत्मानन्द-सभा
भावनगर.
(काठियावाड)

आत्मानन्द पुस्तक प्रचारक मण्डल,
रोशन मुहल्ला,
आग्रा-सीटी।